सु[illegible]मित्र !

वर्ष 2 संख्या ६ | [illegible] | पूर्ण संख्या २६
४८|[illegible] | १ जनवरी १९३३

मैं तो चाहता हूं कि यहां के ब्रह्मचारी प्राण विद्या को सीखकर बाहर अच्छे गृहस्थों के आदर्श स्थापित करें। और ब्रह्मचर्य का सेवन करें। वहां भी मनुष्य [illegible] हो सकता है। किसी ने लिखा है, पशु मनुष्य से अच्छे हैं। क्योंकि पशु सन्तानोत्पत्ति के लिये ही मिलते हैं, अन्य कर नहीं। ब्रह्मचर्यावस्था में ठीक रहोगे तो अच्छे पत्नी रह सकोगे। मुझे पता है कि ३० वर्ष की आयु के बाद भी जिन लोगों ने संयम से रहना प्रारम्भ किया है, वे फिर १० वर्ष में ही सदा के ब्रह्मचारी मालूम होने लगते हैं। अपनी सब पिछली अवस्थाओं को भूलकर नये सिरे से जीवन आरम्भ करो।

स्वर्गीय कुलपति

प. [illegible]

सर्वमित्र
(पाक्षिक-पत्र)
१८।१२।२९ रविवार 1-1-33

बलिदान-दिवस

बलिदान दिवस की पुण्य तिथि पर सम्पूर्ण देश के साथ हम भी अमर कुलपति के चरणों पर अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी उन महान आत्माओं में से थे जो कि देश को बड़े भाग्य से मिलती हैं। उनका वीरतापूर्ण बलिदान उनके सुन्दर और सच्चे जीवन से कम शानदार नहीं था। उनका एक बहका ये हुए मुसल्मान से मारा जाना उनके बलिदान के गौरव को कम नहीं कर सकता। संसार जानता है कि उनके हृदय में दूसरे सम्प्रदाय वालों के लिये विशेषकर मुसल्मानों के लिये कितना प्रेम था। उनके विचार उस संकुचित साम्प्रदायिक सीमा को सर्वथा लांघ चुके थे जो मनुष्य के अन्दर द्वेषबुद्धि पैदा कर देते हैं। उनके हृदय में प्रत्येक प्राणी के लिये प्रेम था चाहे वह मुसलमान हो या ईसाई। इसी सार्वभौम प्रेम की वेदी पर ही उन्हों ने अपने जीवन का एक एक पल बिताया।

उस एकता के स्वर्णीय युग में जब कि भारतवर्ष में एक सिरे से दूसरे सिरे तक एकता की धूम मची हुई थी, आप दिल्ली के बेताज बादशाह हो रहे थे। उस समय स्वयं मुसलमानों ने उनको जामा मस्जिद की पवित्र वेदी पर बिठा कर उन से सत्य और प्रेम का सन्देश सुनाने को कहा था। यह कौन भूला होगा?

आज दलित वर्ग को गले लगाने के लिये शायद देश में हमें बहुत मिल जांय, जब कि हिन्दुस्तान में इस बात के लिये एक ज़बर्दस्त लहर पैदा हो चुकी है। वह ज़माना भी था जब कि लोग उनकी परछाईं से भी भय खाते थे; यदि किसी कुलीन माने जाने वाले मनुष्य को उसकी छाया भी छू जाती थी तो उसका पवित्र होना मुश्किल हो जाता था। उस विषम समय में उनके व्यापक और अनिर्वचनीय प्रेम ने, उनके विशाल हृदय ने, इन अछूत कहे जाने वाले भाइयों को गले लगाया था। सच मुच कालिदास का यह वचन 'वह उर विशाल यह व्योम तनु' ऐसे ही नर रत्नों के लिये लिखा गया है। अछूतों के लिये वह धन, प्राण, सर्वस्व तक छोड़ देने को तय्यार थे। इन्हीं के लिये

उन्हों ने कांग्रेस के यशस्वी प्लेटफ़ार्म को बिदा दी। हो सकता है इस बात को कई लोग अच्छा न भी समझते हों। परन्तु इस बात से इनकार नहीं हो सकता कि उनके ऐसा करने का मुख्य कारण दलित सेवा की तीव्र भावना ही थी। आज के इस नाज़ुक वख़्त पर-जब कि अछूतों के लिये महात्मा जी ने अपनी ज़िन्दगी तक की बाज़ी लगा दी है - हमें स्वामी श्रद्धानन्द की याद आती है। उन की उपस्थिति दलितों के लिये किये गये इस आन्दोलन में बहुत सहायक होती। हम जानते हैं इस इच्छा का कोई अर्थ नहीं। अब तो यही हो सकता है कि बलिदानोत्सव के पुण्य अवसर पर जनता अपना कर्तव्य समझे। स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान के नाम पर महात्मा गान्धी तथा राजगोपालाचार्य जैसे मान्य नेता दलितोद्धार के लिये, राष्ट्र से, विशेषकर हिन्दुओं से अपील करते रहे हैं। इस अपील का जनता ने कैसा स्वागत किया यह बतलाने की ज़रूरत नहीं। लेकिन इसमें शक नहीं कि उनका बलिदान हिन्दू जनता से बहुत कुछ चाहता है। स्वामी जी इसी काम को करते हुए शहीद हुए और अगला जन्म भी इसी अछूतोद्धार के काम में लगा देना चाहते थे। उन्हों ने हिन्दूजाति की जड़ मजबूत करने के लिये उसे अपने ख़ून से सींचा था। उनकी इस बड़ी सेवा की हिन्दू जनता और राष्ट्र दोनों ही ऋणी हैं। जो व्यक्ति जनता और राष्ट्र के लिये जिया उसी के लिये मरा उस महान व्यक्ति को क्या भारतीय भूल सकते हैं?

स्वामी जी हिन्दूसंगठन के पक्षपाती थे - और शायद इसी लिये दलितोद्धार के कार्य को प्रधानता देते थे। परन्तु इस से यह समझना भ्रमपूर्ण होगा कि वह सम्प्रदायवादी थे। वह हिन्दू संगठन के साथ राष्ट्र हित का हमेशा ध्यान रखते थे। जिस कार्य में वह राष्ट्र का अहित देखते थे उसके पास भी न फटकते थे। स्वामी जी के स्वभाव से और उनके जीवन से जो कोई भी परिचित हैं वे जानते हैं कि वह हिन्दू नेता होते हुए भी विशुद्ध राष्ट्रीय नेता थे। दिल्ली में जो इतनी राष्ट्रीय जागृति और उन्नति दीखती है उसके आदि कारण वह ही थे।

प्रेम और सेवाभाव रखने वाला व्यक्ति किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र से अछूता नहीं रह सकता। सत्य और अहिंसा यदि महात्मा गान्धी को राजनीतिक क्षेत्र में घसीट कर ले जा सकते हैं, यदि धर्मभाव महामान्य मालवीय जी को राजनीति में ले जा सकते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं कि

स्वामी जी का अनुपम प्रेम उनको ऐसे काम में क्यों न डाल देता? उन्होंने प्रायः हर एक सार्वजनिक क्षेत्र में हाथ डाला और उसको खूब शान से निबाहा। उनका आन्धकार मय पूर्व दिशा से सूर्य के समान उदय हुआ और ज्यों २ वह सार्वजनिक क्षेत्र के क्षितिज से उठ कर ऊपर चढ़ता गया लोगों के सामने अधिकाधिक उज्वल रूप में आता गया। उनके सार्वजनिक जीवन का प्रभात काल और संध्या काल दोनों ही मनोहर और शानदार थे।

उनका सार्वभौम प्रेम बेसूद और वन्ध्या होता अगर उसके साथ उनमें अदम्य उत्साह और संलग्नता न होती। उनके जीवन में इन दोनों गुणों का सम्मिलन सुवर्ण और सुगन्ध का संयोग था। इसी लिये जिस बात में वह लोक कल्याण देखते थे उसमें पूरे उत्साह से जुट जाते थे- दुनिया चाहे कुछ कहती रहे। उन्होंने देश में दी जाने वाली शिक्षा में गुलामी की बदबू आयी तुरन्त इसे हटाने के लिये कटिबद्ध होगये और शिक्षा की धारा को ही एक दम बदल डाला। इसी का परिणाम है कि जो शिक्षा पहले अंग्रेजी के माध्यम में ही प्रचलित थी- वही अब प्रायः सब जगह हिन्दी के माध्यम में दी जाने लगी है। उनके दिल में आया कि 'सद्धर्म प्रचारक" पत्र उर्दू से हिन्दी में हो जाना चाहिये -क्योंकि राष्ट्र को राष्ट्र भाषा की आवश्यकता है जो कि हिन्दी ही हो सकती है- झट पत्र हिन्दी में कर दिया; इस बात की परवाह नहीं की कि हिन्दी पढ़ने वाले ग्राहक कहां से आयेंगे।

शिक्षा ~~की ओर~~ जो उन्होंने आश्चर्य जनक देन दी है वह गुरुकुल के रूप में है जिसको हम उनका जीवित यश कह सकते हैं। वह गुरुकुल के बाहर रहते हुए भी, कुल की तरह पालना करते थे, उसकी उन्नति के उपाय सोचते थे। बलिदान से पूर्व भी उनके दिमाग में गुरुकुल के विचार चक्कर काटा करते थे। अब जब कि भौतिक देह में वह हमारे मध्य में उपस्थित नहीं हैं हमारा कर्तव्य है कि उनके यश को बनाये रखें- उसके लिये बड़े से बड़ा त्याग करने को भी तय्यार रहें। हम उनकी स्मृति बलिदानोत्सव मना लेने मात्र से ही स्थिर नहीं रख सकते उसके लिये हमें उनकी शिक्षाओं पर चलना पड़ेगा। भगवान हमें शक्ति दें कि हम अपने में उनसा दिव्य प्रेम पैदा करके उनकी शिक्षा को सफल बना सकें; एवं देश और राष्ट्र के लिये हितकर सिद्ध हो सकें।

अन्त में हम फिर एक बार इस पुण्य अवसर पर श्रद्धास्पद कुलपति श्रद्धानन्द जी के चरणों पर सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पण करते हैं।

* कुछ आप बीती . .

गुरुवायूर :—

महात्मा जी ने जिस प्रकार खेड़ा बारदौली और चम्पारन भारतवर्ष में विशेष महत्वपूर्ण स्थान बना दिये हैं उसी प्रकार गुरुवायूर के मन्दिर की तरफ भी आज सारे भारतवर्ष की आंखें लगी हुई हैं। आज से पहिले तक महात्मा जी का जीवन और मृत्यु - दूसरे शब्दों में राष्ट्र का जीवन और मृत्यु - का प्रश्न गुरुवायूर बना हुआ था। गुरुवायूर हाथ से निकला तो सब कुछ खोया और अगर गुरुवायूर जीत लिया तो सदियों का सवर्ण हिन्दुओं के पाप का गढ़ गिरा दिया। १८ सितम्बर के दिन सदियों से चले आते हिन्दुधर्म के कलंक को मिटाने के लिये एक महात्मा ने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी थी। उनको उनकी सारा भारतवर्ष कांप उठा और सारे देश के कोने २ में एक लहर चल गयी। यरवदा पैक्ट बना और महात्मा जी ने अपना उपवास तोड़ा। परन्तु उस समय किसी को क्या मालूम था कि इस पैक्ट के पीछे एक छोटा सा बादल है जो कुछ ही दिनों में भयङ्कर रूप धारण कर लेगा। अभी कुछ ही समय बीता था कि उस भयङ्कर उपवास की घोषणा ने फिर हलचल मचा दी। सारा देश इस तरफ़ जुट पड़ा और देश के सब नेता गुरुवायूर चल पड़े। मत ग्रहण किया गया। मत ग्राहक कमेटी बनायी गयी। ६६% मन्दिर प्रवेश के हक में रहे। १३% ~~मत~~ विरोध में और १०% उदासीन। परन्तु जमोरिन का आसन नहीं हिला, लोगों का ध्यान फिर यरवदा मन्दिर के पुजारी की तरफ़ खिंचा। २ जनवरी का क्या होगा। इस आशङ्का से सब व्याकुल होगये। पर परमात्मा की कृपा से उस १½ घंटे की हड्डियों का आमरण उपवास का निश्चय बदला और राष्ट्र की जान में जान आयी।

परन्तु क्या महात्मा जी के निश्चय परिवर्तन ने हमारा काम आसान कर दिया है? हमारी समझ में तो इस निश्चय परिवर्तन ने कुछ बढ़ा ही दिया है। सुधारकों के प्रयत्न में कमी आने पर महात्मा जी अपना उपवास जारी कर देंगे यह तो निश्चय ही है। अतः हमारा कर्तव्य गुरुता हो जाता है। न केवल महात्मा जी के उपवास की दृष्टि से अपितु सदियों से चले आते हिन्दूधर्म के कलंक को हटाने की दृष्टि से भी हमारा पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि गुरुवायूर के रूप में अछूत अस्पृश्यता को अन्तिम

धक्का दे दिया जाय। अस्पृश्यता की जड़ें काफ़ी खोखली हो चुकी हैं, यह अपनी साँसें गिन रही हैं। इस अन्तिम धक्के की आवश्यकता है कि इसका दम उखड़ जायगा। और इस दम निकालने का निशान गुरुवायूर की फ़तह होगी।

जेबी गोलमेज और ऐक्य सम्मेलन

३०-३५ भारत के स्वयंभू प्रतिनिधि लन्दन के शाही होटलों में ठहरे हुए, जेबी गोलमेज़ में बैठ कर और आपस में मुर्गे और बटेरों की सी लड़ाई लड़ कर हमारा अधिक हित सम्पादन कर रहे हैं अथवा इलाहाबाद के दरभङ्गा प्रासाद में बैठ कर देश के कोने २ से आये विभिन्न हितों और विचारों के विश्वास और सदिच्छा से समझौता करने वाले प्रतिनिधि हमारा अधिक हित सम्पादन कर रहे हैं, इसका अन्तिम परिणाम तो समय ही बतायेगा। पर हमारा दिल और विश्वास अगर कुछ कह सकता है तो वह पिछले प्रतिनिधियों को ही अधिक पसन्द करता है।

हमारी पवित्र विभूति मालवीय जी के असीम धैर्य और उद्योग, मौलाना आज़ाद का अथक परिश्रम और एकता के लिये छटपटाहट ने प्रयागराज पर फिर एक त्रिवेणी संगम कराया है। हिन्दुस्तान के सभी फ़िरक़ों, मतों और विचारों के प्रतिनिधि अपनी २ तरफ़ से पूरी कोशिश कर रहे हैं कि इस बार एकता टूटने का इलज़ाम हम पर न आये। इसलिये दिन रात अथक परिश्रम करके श्रीयुत सी. विजयराघवाचार्य के नेतृत्व में उन लोगों ने करीबन २ सभी समस्याओं का हल कर लिया है। बंगाल की समस्या को हल करने के लिये वो कलकत्ता गये हैं। लगता है इस बार तो यह साम्प्रदायिकता का जहाज़ अवश्यमेव एकता करने की सदिच्छा रूपी चट्टान से टकरा कर टूट जायगा। इससे पहले भी कई बार एकता के लिये प्रयत्न हो चुके हैं। स्वयं लोकमान्य और महात्मा जी इसके लिये एड़ी से चोटी तक ज़ोर लगा लगा कर थक चुके हैं परन्तु अभी तक पूर्ण रूपेण सफल नहीं हो पाये थे। इस बार का इलाहाबाद का एकता सम्मेलन आशा तो ऐसी ही लगती है कि सफल होकर ही रहेगा।

हम ऐसे सुन्दर और सदिच्छा के अवसर पर राष्ट्र को बधाई देते हैं और इन प्रतिनिधियों का अभिनन्दन करते हैं और धन्यवाद करते हैं। परन्तु ज़रा पर्दा उठाइये। पर्दे के पीछे यह क्या बटेरों की सी लड़ाई है? यह जनाब! जेबी गोलमेज़ के स्वयंभू प्रतिनिधि रोटी के ज़रा २ से टुकड़े

पर एक दूसरे को फाड़ खाये डालते हैं। एक दल है जो सिर्फ़ Stay Britishers की नीति ही जानता है। दूसरा दल अलग ही अपनी ढपली बजा रही है। तीसरे दल वाले व्यर्थ ही एक दूसरे को कोंचरहे हैं। यह बोरों की लड़ाई दिखला कर साकारतमाशा सिक्का देख रही है। और दुनिया के सामने भारत की अयोग्यता दिखला रही है।

पहिले तो हमें यह सिद्धान्त ही पसन्द नहीं आता कि अभी तक हम क्या प्राप्त होगा, यह मालूम न होने पर भी हम पहिले ही एक दूसरे से लड़ झगड़ रहे हैं। परन्तु फिर भी मनुष्य स्वभाव की दुर्बलता के कारण अगर हम आपस में हिस्सा बाँट करने बैठे हैं तो बन्दर को ही क्यों सारी रोटी दे दें? उस कल्पित रोटी में सब भी अपने लिये ही सब कुछ रक्खो। तीसरे को पंच बनाने से तो कभी कुछ नहीं मिलेगा। इसी तीसरे को पंच बनाने के परिणाम स्वरूप प्रधानमंत्री का साम्प्रदायिक निर्णय हुआ था। उससे क्या मिला? क्या मुसल्मानों को सन्तुष्ट कर दिया गया? क्या हिन्दुओं का पेट भर गया? क्या सिखों और सिखों को कुछ ज्यादा मिल गया है?

जब नहीं मिला तो आपस में ही क्यों न निबट लो। उनका निर्णय भी तो लाठी के जोर पर मानते हो, स्वयं ही कोई निर्णय क्यों नहीं कर लेते, स्वयं ही अपना भाग्य निर्णय क्यों नहीं करते? इस जमीन पर हमें हिन्दू और मुसलमान सिक्ख और पारसी आदि ने रहना है। फिर अंग्रेज हमारे पंच कौन? क्या और कहीं कभी ऐसा हुआ है? फिर स्वराज क्या गोलमेजों से मिलेगा या स्वतन्त्रता की देवी को रुधिर दान से सन्तुष्ट करने पर? किस देश को बिना देवी को भेंट चढ़ाये स्वराज मिला हो।

तो क्यों नहीं जेबी गोलमेजों का आसरा छोड़ते? क्यों नहीं प्रकाश राज के संग्राम में बहकर पुण्य करते?

उस दिशा में प्रयत्न के कारण सम्पूर्ण राष्ट्र हमसे धन्यवाद का पात्र है। और महात्मा मालवीय जी तथा और. आजाद सारे राष्ट्र के धन्यवाद के पात्र हैं।

कुछ जागती

युद्ध-ऋण और इंग्लैण्ड की साख

जिस समय यूरोप और एशिया महायुद्ध में जूझ रहे थे उस समय अमेरिका तटस्थ होकर तमाशा देख रहा था। न केवल तमाशा देख रहा था अपितु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहा था। यूरोप का कोष जब कि रीता पड़ रहा था उस समय अमेरिका के स्वर्णभण्डार सूरज की गर्मी

(इससे आगे पृ. १० पर देखिये)

और इंगलैण्ड की साख पर रही है। अब वह दिन दूर नहीं जबकि सभी स्वाभिमानी राष्ट्रों के साथ भारतवर्ष भी ब्रिटिश सिंह की 'पूंछ मरोड़' कर स्वाधीन राष्ट्रों की श्रेणी में आ खड़ा होगा।

स्थानीय - चक्र

तब के कुलमंत्री

विगत कुलमंत्री जी पर इस समय कुछ भी लिखना असामयिक तो अवश्य है। परन्तु जब हम यह देखते हैं कि इस बार ऐसे सार्वजनिक और महत्वपूर्ण विषय पर अभी तक किसी पत्रिका ने नहीं लिखा है, तो हम इस असमय में ही अपनी कलम उठाने को विवश हो रहे हैं। यह विषय कितने सार्वजनिक महत्व का है यह किसी से छिपा नहीं है। अतः इस असमय में हमारे ये कुछ विचार अवश्य लाभदायक साबित हो सकेंगे, इसी आशा से हम लिखने बैठे हैं।

यह साल कुलमंत्रित्व की दृष्टि से बड़ा ही अजीब रहा है। इधर पिछले ५-६ सालों से एक साल में दो कुलमंत्री नहीं बने थे। पहिले कुलमंत्री श्री सुभाषचन्द्र जी के सत्याग्रह संग्राम में जाने के कारण द्वितीय कुलमंत्री का चुनाव करना पड़ा। प्रथम कुलमंत्री यहां उपस्थित नहीं हैं अतः उनके विषय में अधिक लिखना पीठ पीछे कहना होगा और इसीलिये हम इस पर अधिक नहीं लिखेंगे परन्तु एक बात कहे बिना नहीं रहा जाता और वह ~~कि~~ है उनका त्याग पत्र। अपने त्यागपत्र के सिलसिले में कुलजन्मोत्सव पर उन्होंने कुलमंत्री बनने से कुछ शिकायतें रखी थीं। उन शिकायतों में अंशतः तथ्य भी है वहां उनके दूसरे पहलू - विद्यार्थियों के सहयोग के अभाव की शिकायत - में बिलकुल उनके मामले में उतना तथ्य नहीं है। हम यह विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि पिछले कुलमंत्रियों को जितना सहयोग मिलता रहा है उससे बल्कि कहीं अधिक उन्हें मिला था। इस प्रकार इतने सहयोग के होते हुए भी सहयोग न देने की शिकायत तो वस्तुतः एक प्रकार से लोकमत का अपमान है। परन्तु जहां हम यह दोषारोप कुलमंत्री पर देते हैं वहां अवश्य हमें अपनी जिम्मेवारी को नहीं भूलना चाहिये। कुलमंत्री चुनने के बाद वस्तुतः हम लोग अपनी जिम्मेवारी की इति-श्री समझ लेते हैं। और यह समझ रहे होते हैं कि कुलमंत्री बनाकर हमने अमुक पर बड़ा अहसान किया है। परन्तु बेचारा कुलमंत्री ही जानता है कि ब्रह्मचारी और अधिकारी इन दो चक्की के पाटों में उसकी क्या दुर्गति होती है।

(इससे आगे पृ. ११ पर देखिये)

देख रहे थे। और इस कार्य ने संसार की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अमरीका का महत्व आज दिन सर्वोपरि कर रखा है। युद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों ने - दूसरे शब्दों में 'Big four' ने जर्मनी को बुरी तरह हर्जाने से लाद दिया है। जर्मनी के इस बोझ ने यूरोपियन राष्ट्रों के सामने कई बार समस्या उत्पन्न की है। उन में से सब से नूतन समस्या लूसेन कान्फ्रेंस में हल की गई थी। परन्तु जहां इस कान्फ्रेंस में जर्मनी को यह रियायत दी गई थी कि उसका लिया रुपया मित्र राष्ट्र नहीं लेंगे वहां आपस में ही एक गुप चुप सन्धि कर ली गयी थी कि बशर्ते कि अमेरिका अपना युद्ध ऋण जो कि यूरोपीय राष्ट्रों पर है वह पिछले साल की तरह इस बार भी स्थगित कर दे। उसके थोड़े दिनों बाद उधर अमेरिका में दृश्य बदला। हूवर को गद्दी नशीन दिया गया और रूजवेल्ट साहब आ विराजे। ये रूजवेल्ट साहब हूवर ~~रिपब्लिकन~~ डैमोक्रेटिक के सख्त खिलाफ़ हैं। इस लिये अब यूरोपियन राष्ट्रों को अपना युद्ध ऋण चुकाना पड़ रहा है। इंगलैण्ड ने इस पर अमेरिका को बहुत कुछ लिखा पढ़ा परन्तु अमेरिका ने ताड़ अंगूठा दिखला दिया। अब इंगलैण्ड ने तो अपनी रकम अदा कर दी है पर और राष्ट्रों के सामने समस्या है। फ्रांस में तो कुछ दिन पहिले ख़बर आयी थी कि मि. हेरियट का युद्ध ऋण अदा करने का प्रस्ताव ही फ़ेल हो गया है और इस लिये वे अब त्यागपत्र देना चाहते हैं। इटली आदि ने भी इन्कार कर दिया है। अभी पता नहीं आगे क्या गुल खिलते हैं।

दूसरी तरफ़ फ़ारस से ब्रिटिश सिंह का दबदबा उठ रहा है। सन १९०१ में फ़ारस से तलवार के ज़ोर पर यह सन्धि की गयी कि ६० साल तक एक इंगलिश कम्पनी को फ़ारस के तेल का ठेका मिलेगा। और फ़ारस सरकार इस में हस्तक्षेप नहीं करेगी।

परन्तु अब फ़ारस सरकार की आंखें खुलीं। उसने देखा कि यह तो सरासर हमारा गला घोंटा जा रहा है और हमें निर्बल देख कर हम पर ज़बर्दस्ती सन्धि की शर्तें लादी गयी थीं तो उसने उस सन्धि को मानने से साफ़ इन्कार कर दिया। इस पर ब्रिटिश सिंह बहुत गरजा परन्तु फ़ारस सरकार ने उसकी पर्वाह नहीं की। अब ब्रिटिश सिंह ने हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में यह मामला पेश करने की धमकी दी तो फ़ारस सरकार ने कहा कि यह उसकी विचार सीमा में ही नहीं आता। अब इस पर यह मामला अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय भेज दिया गया और अब देखना यह है कि क्या होता है।

इन दो बातों से यह सिद्ध है कि संसार से ब्रिटिश सिंह का दिखावा दूर होता जा रहा है और अन्य राष्ट्र भी अपनी सत्ता समझने लगे हैं।

अमेरिका के ऋण सम्बन्धी मामले से भी स्पष्ट है कि इस समय संसार की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अमेरिका का महत्व बहुत बढ़ रहा है।

(इससे आगे पृ. ७ पर देखिये)

द्वितीय कुलमंत्री श्री विद्यानिधि जी हो गये थे। आप पूर्व कुलमंत्री के विचारों के ठीक उलटे विचारों के (कम से कम हमारा 'सीडिक्' तो यही है) थे।

यहां हम एक बात कह दिया चाहते हैं। वह यह कि जो भी प्रतिनिधि चुने जाया करते हैं, उनकी अपनी इच्छा कुछ मतलब नहीं रखती। सार्वजनिक महत्व के कार्यों में जो कुछ भी उनके निर्णय कर चाहते हैं, वही विचार आगे उन्हें पेश करने होते हैं। अपनी इच्छा से कोई मौलिक परिवर्तन करना उनके लिये उचित नहीं होता है यद्यपि अगर वे अपनी इच्छा प्रकट करदें तो वह मौलिक भी प्रबल प्रमाण से हो सकता है। इसका एक मोटा उदाहरण अजा प्रथा के विषय में है। इस विषय में पूर्व कुलमंत्री भी एक ही मत लेकर के थे और मतों के अनुसार उसे जारी रखना ही तय हुआ था। वह विषय जो इस प्रकार तय हुआ हो, उसे केवल ४-५ ही कुलसदस्यों के दुबारा विचारार्थ पेश करने के लिये कहने पर ही दुबारा विचारार्थ रखदेना कुछ ठीक नहीं जंचता। अवधि और महत्व पूर्ण बातों पर भी यदि किसी ने कुलसभा द्वारा कुछ निर्णय करवाना हो तो एक अच्छी बहुसंख्या को अपने हक में करके तब कुलमंत्री के सामने रखना होता है। इसका एक अच्छा उदाहरण श्री ब्रह्मानन्द के कुलमंत्रित्व में ब्रह्मचारी विषयक सभा का है जबकि लोगों के लिये जो प्रार्थनापत्र दिया गया था उसमें बीसियों के दस्तखत थे। पर होना था कि काफी सदस्यों के इच्छा प्रकट करने के बाद कुलसभा होने पर यही निर्णय होता कि अजा प्रार्थना रद्द करदी जाय पर कम से कम ऐसी प्रथा तो नहीं डाल देनी चाहिये कि जिससे आगे आने वाले कुलमंत्री के मार्ग में दिक्कत पेश आवे।

एक यही एक बात हमें यह भी बोल रखनी चाहिये कि या तो हम लोग कुलसभा द्वारा कोई निर्णय करें और यदि निर्णय करते हैं तो उसके लिये अन्त तक कोशिश करनी चाहिये। बशर्ते कि हमें यह न सिद्ध करदिया जाय कि आपका यह निर्णय गलत है। शुल्क विषय को ही लेलीजिये। सभा में जब यह हुआ था कि २२ रु. चालू करदीजाये और कुछ विशेष धरोहर प्रथा के रूप में रख जांय।

श्री कुलमंत्री जी ने इस सभा विषयक सभी कार्यों में बड़ी जागरूकता से कार्य लिया उसके लिये वे अवश्य प्रशंसनीय हैं परन्तु उस निर्णय के अनुसार चलकर के इसी मास को तो कि कुलसभा के निर्णय को बाद ही गुला दिया गया। आशा है आगे आनेवाले कुलमंत्री इन बातों पर ध्यान रखेंगे।

इन दोनों महानुभावों का कार्यकाल समाप्त हुए अरसा गुजर गया

और अबकी बातें असामयिक सी लगती हैं परन्तु फिर भी हम उन्हें कुल के कार्य को शान्तिपूर्वक सुचारुरूप से चलाने के लिये धन्यवाद देते हैं और नवीन कुलमंत्री को बधाई देने के साथ २ आशा करते हैं कि वे इन दोनों के कार्यकाल से अनुभव उठा कर अपने कार्यकाल को उज्ज्वलतर रूप में रक्खें। वर्तमान कुलमंत्री जी पर अपनी सम्मति हम फिलहाल 'रिजर्व' रखते हैं।

क्रीडामंत्री —

वर्तमान क्रीडामंत्री का कार्यकाल समाप्त होगया है और नवीन क्रीडामंत्री का अभिषेक भी होगया है। क्रीडामंत्री का पद कुछ सालों से बहुत अधिक महत्वपूर्ण होरहा है। कुछ आश्चर्य नहीं कि धीरे २ यह पद कुलमंत्री पद की समता तक पहुंच जावे। इसलिये इस महत्वपूर्ण कार्य के संचालक को उपेक्षा की दृष्टि से देखने का अनुमान नहीं रखा जा सकता। इसकारण इस कक्षा के सिंहावलोकन करना आवश्यक होगया है।

विगतवर्ष जब श्री शिवदत्त का कार्यकाल समाप्त हुआ था और नये क्रीडामंत्री का चुनाव हुआ था उस समय की परिस्थिति से सब की आंखें इस तरफ लग रही थीं कि देखें अगले साल भी क्या यही रफ्तार रहेगी अथवा वही मसल होगी कि 'एक कदम आगे बढ़े, तो कदम पीछे फिसल पड़े।' हमें यह लिखते खुशी है कि यह मसल हम पर नहीं घटती और इससमय भी हमारा कदम उन्नति की तरफ हो रहा है। न केवल हाकी में ही अपितु कुश्ती तथा तैरी इत्यादि पर भी इतना ध्यान दिया गया है।

आजकल भी नियमपूर्वक कुश्ती होती है और बहुत से भाई पहलवान जैसे फायदा उठाते हैं। इसी प्रकार गर्मियों में नहर में दो तीन तैरी के सम्मेलन भी हुए - सिंह तैरी और लम्बी तैरी। लम्बी तैरी का तो विशाल आयोजन था। सभी पंचायती बस्ती उसमें निमन्त्रित किया गया था और बड़े अच्छे ढंग से इसे सम्पन्न किया गया था। कौन कह सकता है कि इन्हीं उत्साहमय आयोजनों के कारण ही नहीं गढ़ के मेले में हमारे ब्रह्मचारी भाइयों को तैरी के दङ्गल में विजयश्री ने वरमाला पहनायी थी।

इसी प्रकार श्री श्रद्धानन्द गुरुकुल हाकी टूर्नामैन्ट में भी पूर्ण निराशा का साम्राज्य था। किसी तरफ से भी उम्मीद नहीं थी परन्तु क्रीडामंत्री जी ने बहुत लि... के पश्चात एक अच्छा खासा शानदार टूर्नामैन्ट करादिया

टूर्नामेन्ट में बहुत सी त्रुटियां रह गयी हैं और यह स्वाभाविक भी था। इतने थोड़े फण्ड के साथ और इतने जल्दी बाव ग्रह दैवीय प्रतिकूलता के इतनी त्रुटियां दूर नहीं की जा सकती थीं। कुछ प्रबन्ध सम्बन्धी त्रुटियां भी रहीं और इसका मुख्य कारण क्रीड़ामंत्री जी की अनभिज्ञता ही थी। जैसे पहिले १-२ दिन पानी का प्रबन्ध ठीक नहीं था और एक दिन चाय देर में पहुंची।

कारण यह था कि क्रीड़ामंत्री जी स्वयं तो रैफरी कर रहे थे और उधर प्रबन्ध में यह गड़बड़ हो रही थी। होना यह चाहिये था कि क्रीड़ामंत्री सिवाय खेलने के और खेल सम्बन्धी कोई कार्य अपने सिर न लेकर स्वयं सब प्रबन्ध अपने निरीक्षण में रखें। पीछे से यह प्रबन्ध ठीक हो गया था और इसका कारण यह था कि उधर ध्यान दिया गया।

कुछ रैफ्री सम्बन्धी त्रुटियां थीं। इस विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। अन्यत्र प्रकाशित एक लेख में इसका जिक्र भी है और इसे सबने महसूस भी किया है अतः इस विषय में तो भविष्य में प्रबन्ध होगा ही। दैवीय विपत्तियां भी कम नहीं थीं। वर्षा हो रही थी और दल अपने २ जाने के लिये जोर दे रहे थे परन्तु क्रीड़ामंत्री जी ने बड़ी धीरता से सभी दलों को रोके रक्खा और बड़े उत्साह से कुछ सहयोगियों के साथ एक नया ही क्रीड़ाक्षेत्र तैयार कर दिया।

इसीलिये इन सब कामों के लिये श्री क्रीड़ामंत्री हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

एक बात कुछ इनके टूर्नामेन्ट की तिथियों के बारे में है। ये तारीखें ठीक नहीं बैठतीं ऐसी आलोचना की जाती रही थी। अतः अगले क्रीड़ामंत्री जी के लिये यह विषय भी विचारणीय अवश्य होगा।

अन्त में हम नवीन क्रीड़ामंत्री जी का स्वागत करते हुए उन्हें इस पद पर अभिषिक्त होने पर बधाई देते हैं और उनका ध्यान देसी खेलों की तरफ़ दिलाना चाहते हैं और अवकाशप्राप्त क्रीड़ामंत्री को धन्यवाद देते हैं। आशा है नवीन क्रीड़ामंत्री पूर्व अनुभवों से लाभ उठायेंगे।

स्वागतम्! स्वागतम्!! ब.

पिछले ३-४ सालों से कहीं भी कुल की विजय यात्रा का समाचार नहीं आया था। अब बहुत दिनों में गढ़ के मेले में मैती के दङ्गल में कुल की विजय सुनकर दिल को अपार आनन्द हुआ। हम अपने भाइयों को जिन्होंने इस दङ्गल में हिस्सा लेकर कुल का यश बढ़ाया है, बधाई देते हैं। स्वर्गीय मालवीय जी के विश्वविद्यालय में प्रथम रह कर तथा वहां के विजेयपदम् को

जीतकर जिन भाइयों ने कुल की धाक को बढ़ाया और ज्यादा मान प्राप्त किया है, उनको भी हम अपने दिल से बधाई देते हैं। इतनी कड़ी प्रतियोगिता में भी इन भाइयों ने आकर इन भाइयों ने सचमुच कुल माता का नाम उज्ज्वल किया है और कीर्ति कुलपिता के अदृश्य चरणों पर सच्ची श्रद्धांजलि चढ़ाई है। हम अपने हृदय से उनका स्वागत करते हैं।

सात दिन बनाम एक दिन:—

अभी इस वर्ष ही श्रद्धानन्द सप्ताह के अवसर पर केवल एक छुट्टी की गयी है। श्रद्धानन्द-सप्ताह की कुल में कितनी महत्ता है और इस सप्ताह का कुल में जो स्थान है, उसे देखते हुए यह एक दिन की छुट्टी बहुत अपर्याप्त है। और जबकि और त्यौहारों पर कई २ दिन की छुट्टियां हो जाती हैं तब तो असन्तोष और भी बढ़ता है। हम श्री कुलपति जी से प्रार्थना करते हैं कि वे इस विषय में आचार्य अधिकारियों से शीघ्र ही बातचीत करें और अगर वे इस बात को स्वीकार न करें तो इसके लिये यहां की सीनेट-सिन्डि-प्रतिनिधि सभा-तक पहुंचा जाय। इस मामले में देर करने की आवश्यकता नहीं है, अन्यथा इस मामले को ठण्डा पड़ जाने का भय है।

तपः पुनातु पापयोः :—

पौष मास आधा गुजर चुका है, परन्तु छोटे ब्रह्मचारियों को अभी तक "तपः पुनातु पापयोः" का क्रियात्मक पाठ पढ़ाया जाता है। अभी तक कई छोटे भाइयों के पास चप्पली नहीं है। कई छोटे भाइयों के पास आज हमने चिथड़े २ कम्बल देखे। हमें समझ में नहीं आता कि जो व्यक्ति पौष की सर्दी इस प्रकार काटेगा उसे आगे इन चीजों की क्या आवश्यकता रहेगी? यह तो जेलों से भी बुरी हालत है। क्या हम आशा करें कि उपाधिकारी केवल ~~कोठियां~~ कुल की उन्नति के लिये रुपये की ही छोड़ अपने कर्तव्य की इतिश्री न समझ कर कुछ ठोस कार्य भी इस ओर में करेंगे और इन बच्चों का कुछ प्रबन्ध करेंगे।

पिता का पुत्रों को उपदेश

(शहीद अमर कुलपिता द्वारा)

"दैव्या अध्वर्यवस्त्वाच्छ्यन्तु वि च शासतु। गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्ती" ॥ यजु०, अ. २३, ४२म.

अर्थ— बड़े २ उत्तम विद्वान् जो आत्मा की उन्नति चाहने वाले, आत्म हनन से बचाने वाले हों तुम को उपदेश करें और दोषों को, जो कि तेरे बन्धन स्वरूप हैं, काट डालें; प्रत्येक सन्धिस्थान में भागों का निरीक्षण परीक्षण करें और प्रेम से बंधी हुई, दुष्टस्वभावों को हरती हुई माताएं भी इस प्रकार की शिक्षा करें ॥

इस वेद-मंत्रोक्त आचार्य के लक्षणानुसार पूर्वकाल में आचार्य होते थे। परन्तु मैं यद्यपि वैसा आचार्य नहीं (जैसा कि आचार्य को पूर्ण विद्वान् वेदज्ञ होना चाहिए) और नाहीं उपरोक्त वेदमन्त्र से बतलाए आचरण करने वाला हूं, तथापि मेरा कर्तव्य है। इसमें मेरा दोष नहीं क्योंकि मैं ब्रह्मचारी नहीं रहा और उस समय ब्रह्मचर्य का महत्व किसी को ज्ञात भी न था। ब्रह्मचर्याश्रम की स्थिति को लोगों ने छोड़ दिया, अतः मुझे ब्रह्मचर्याश्रम नियमपूर्वक जैसा रखना चाहिए था वैसा मैंने नहीं रखा। किन्तु उस समय जबकि मैं ब्रह्मचर्य की अवस्था में ब्रह्मचारी न रहा तो भी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता अनुभव करता हूं और अपने अनुभवों से यथा शक्ति दूसरों को सत्पथ पर लाने की कोशिश करता हूं।

उपदेश केवल वाणी से नहीं आचरण से देना चाहिए। परन्तु मैं उस अवस्था में नहीं हूं कि जीवन से उपदेश दे सकूं। मुझे कई बार १४,१५ घण्टे, तक लगातार २ दिन रात जाग कर काम करना पड़ा है परन्तु यह कोई बहाना नहीं हो सकता, क्योंकि मुझे नियम भंग नहीं करना चाहिए थे मैं तुमसे बनावटी (Formal) बात नहीं कहता यथार्थ ही कहता हूं। मैं संसार से छूट कर १६ वर्ष से Second Class में नहीं बैठा था परन्तु बीमारी के कारण दो, तीन वर्ष से बैठना पड़ा। यह भी किसी पाप का ही फल है इसका असर मेरे पुत्रों पर उल्टा पड़ा कि पहिले स्नातक (जो दूसरी संस्था पर के) मुझे देखकर उसी क्लास में बैठे। मेरी कमजोरी है। कमजोरी का फल भुगतना ही पड़ता है। इतनी कमज़ोरियों के होते हुए मैं जीवन से उपदेश नहीं देसकता।

मैं चाहता हूं कि तुम्हें इसी कुल में पता लग जाए कि वीर्य क्या पदार्थ है और शरीर से इसके पृथक् होने से क्या हानियां होती हैं ताकि तुम बाहिर जाकर, और यहां पर भी, अपने को तथा अन्यों को नियम पूर्वक रहने में सहायता दे सको। मेरे पास बाहर से ५००, ६०० ग्रेजुएट्स के पत्र आचुके हैं कि बताओ कौन सा मार्ग है? किधर जाता है? ऐसी २ हालतों में क्या करें? यह ही नहीं परसों ही एक पत्र आया है। जब यह हालत है तब शोचनीय अवस्था और भी भयंकर मालूम देती है। अतः पुत्रों! मैं तुम्हें बताना चाहता हूं कि किस प्रकार इन भयंकर अवस्थाओं से बचना चाहिए। प्रश्नोपनिषद् में सम्पूर्ण जीवन विद्या को दिखाया है।

पश्चिम ने अभीतक नहीं समझा कि chastity (ब्रह्मचर्य) क्या पदार्थ है इसी लिए स्थान २ पर डांवांडोल होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कॉलिजों की बातें श्रद्धा पैदा नहीं होने देतीं। तुम्हारे उपाध्याय भी जब कोई बात सिखानी हो तो स्कूलों कॉलिजों के उदाहरणों को सामने उन २ रहस्यों को समझाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु इस प्रकार सत्य का धारण नहीं होसकता।

जिस काम के ऐसे भयंकर परिणाम हैं उस काम को कभी न करना चाहिए। उसके लिए प्रातः काल की प्रार्थना सर्वश्रेष्ठ है। प्रातः ही मनुष्य को दिन भर का समय विभाग बना लेना चाहिए। किसी जीवन के लक्ष्य को सामने रख कर उसके साधनों की पूर्ति के लिए अपने सारे दिन को बांट ले। इस प्रकार मनुष्य को विचार का कोई समय ही न मिलेगा। परन्तु उन्नति ही उन्नति करता जाए-गा। स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि आठ प्रकार के मैथुनों का वर्जन करना चाहिए। जिससे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन हो सके। उन्होंने लिखा है कि पाँच वर्ष का लड़का लड़कियों के आश्रम और पांच वर्ष की लड़की लड़कों के आश्रम में न जावे। आजकल देश की अवस्था गिर गई अतः ऐसे नियम बनाने पड़े। वास्तव में प्राचीन काल में ऐसे नियम कहां थे वहां तो गुरु का एक परिवार होता था उसमें लड़के लड़कियां सब इकट्ठे रहते थे। ग्रामों में भिक्षा मांगने जाते थे परन्तु अब वह जमाना नहीं रहा। अब तो पांच वर्ष की अवधि लगानी पड़ती है। आठ मैथुनों में पहिला मैथुन —

१. दर्शन है।

पहिले दर्शन का निषेध है जिससे आंख रूप में न फंस जावे और ब्रह्मचारी अपने उच्च पद

से गिर न जावे। दर्शन के निषेध का यह अभिप्राय नहीं कि स्त्री पर आंख पड़ गई तो पाप होगया अथवा वहां से दौड़ जावे। यूं तो माता और बहिन को देखते ही हैं। चाहिए यह कि स्त्री जाति में से छोटी बड़ी कोई भी आवे तो उसमें मातृशक्ति का ध्यान करके सिर झुका आगे बढ़ जावें। दर्शन के निषेध का यह अभिप्राय है कि अपने आनन्द के लिए रूप में फंस न जाना चाहिए। जिस वस्तु के देखने मात्र से आनन्द होता है उसको देखते ही रहना ठीक नहीं क्योंकि इसमें तो आदमी इन्द्रिय का गुलाम बन जाता है। स्त्री क्या, संसार की कोई भी प्राकृतिक वस्तु हो उसको देखना ही उद्देश्य बनाकर देखते रहना ठीक नहीं। उद्देश्य ऐसा बनाना चाहिए जिससे शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नतियों में से कोई सी भी उन्नति होती हो। विद्यार्थी अवस्था में विद्यार्थी को ज्ञान प्राप्त करना है अतः उसकी प्रवृत्ति होती है कि वह वस्तुओं को देखता फिरे और उनसे ज्ञान प्राप्त करे। परन्तु जो विद्यार्थी ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य को भूल जाते हैं और वस्तुओं के दर्शन मात्र के लिए इधर उधर घूमते फिरते हैं सिवाय इसके कि वे इन्द्रियों के गुलाम बनकर संयम को छोड़ अपनी गिरी हुई अवस्था बना लें और कुछ नहीं होसकता। विद्यार्थी अवस्था को इस प्रकार खोकर 30, 32 की उमर में पहुंच पछताते हैं — "हाय, हमने कुछ न किया सारी पिछली उमर व्यर्थ गवां दिया" वह 30, 32 वर्ष की अवस्था संसार क्षेत्र में उतरने की होती है जब कि मनुष्य निराशा में पड़कर अपना जीवन खो बैठता है और सांसारिक कठनाईयों से मुकाबिला नहीं कर सकता और नहीं उन्हें जीत सकता है। अतः दर्शन का अर्थ है कि रूप में फंसना

न चाहिए; चक्षुरिन्द्रिय को अपने वश में रखना चाहिए। सारे देशों के विद्वान एक मत होकर जननेन्द्रिय को सबसे पवित्र मानते हैं। इसीसे उत्पत्ति होती है और इसीसे आजा ए रईसा है, जिसका अर्थ है "सबसे उत्तम इन्द्रियाँ" परन्तु इस समय इस अंश में सबसे गिरी अवस्था फारसी जानने वालों की है। मुहम्मदीय जातियां और उनके आदर्श ईसाईयों से भी गिरे हुए हैं। पर उन मुहम्मदियों के विद्वानों ने भी इसे पवित्र कहा है।

२. स्पर्शन

स्पर्श से मनुष्य मारा जाता है किसी के हाथ को या किसी अंग को पकड़ कर कोमल २ स्पर्श करते रहना इससे अपना नाश भी होता है और दूसरे का भी। यदि अपना नहीं भी होता तो तुम यह कैसे कह सकते हो कि दूसरे का भी नहीं होगा। तो भी अंगों को पकड़ने का अभ्यास न जाने किसका घात करे यह तुम नहीं कह सकते। जिस किसी का वीर्यनाश तुम्हारे स्पर्श से होता है उसका पाप तुम्हारे सिर है। मित्रता में मनुष्य एक दूसरे को पकड़ने का अभ्यास कर लेते हैं परन्तु यह अभ्यास बुरा है। मित्रता एक-दूसरे पर विश्वास से और एक दूसरे को ठीक रास्ते पर लेजाने में होती है। यदि तुम्हारे मित्र को अपने ही अन्दर से या अन्य किसी प्रकार से मालूम हो गया कि इस प्रकार स्पर्श से हानि होती है और वह तुम्हारी आदतें छूटती न देखेगा तो वह शनैः २ तुमसे पृथक् रहना आरम्भ कर देगा। वास्तविक मित्रता टूट नहीं सकती परन्तु काम चेष्टाओं के कारण जो सामयिक झुकाव एक दूसरे पर होते हैं वे कभी स्थिर नहीं रह सकते और वे बनावटी मित्रताएं अवश्य टूटती हैं। प्रकृति की ओर से मनुष्य को प्राण शक्ति और स्त्री को रति शक्ति

मिली है। पुरुष में वीरता दृढ़ता और धैर्यादि गुण स्वाभाविक हैं, चट्टान की दृढ़ता के समान पुरुष को होना चाहिए। स्त्री में दया, उदारता, कोमलता प्रेमादि स्वाभाविक होते हैं। जहां कहा गया है कि दर्शन में न फंसे वहां स्पर्शन में भी न फंसना चाहिए। अर्थात् आनन्द के लिए कोमल २ स्पर्श नहीं करना चाहिए। अत एव कुश्ती के समय पहलवानों को कहा जाता है कि जब तुम लड़ो तो एक दूसरे को शत्रु समझो। उसका यही तात्पर्य है कि स्पर्श से दोष उत्पन्न न हो। प्रलोभन से बचने के लिए, उसमें न मिलने के लिए शत्रु भाव रखना आवश्यक है। इसी प्रकार दो ब्रह्मचारियों को एक साथ लेटना न चाहिए। एक साथ लेटे हुए जो थोड़ा २ भी स्पर्श होता रहता है वह भी वीर्यनाश के लिए पर्याप्त है। बात यही है, कि यदि तुम्हें कुछ नहीं होता तो तुम्हारे कारण न जाने किसको क्या होजाए। अतः ऐसा कार्य ही न करना चाहिए कि जिसमें बुराई की संभावना हो। बातचीत तो जैसे लेट कर हो सकती है वैसे बैठ कर भी हो सकती है। नेपोलियन में अपूर्व आत्मा की दृढ़ता थी - वह ब्रह्मचारी था। उसके विरुद्ध उसको व्यभिचारी सिद्ध करने के लिए लघुपुस्तक निकाले जाते थे। वह कहता था कि उन मूर्खों को यह समझ नहीं आता कि यदि मैं व्यभिचारी होता तो इतना काम कैसे कर सकता। जापान में जिजुत्सु की विद्या को जानने वाले, बड़े २ पहलवानों को रग दबाकर वश में कर लेते हैं। उन्हें मार डालते हैं। शरीर घड़ी से भी सूक्ष्म है। यह अनुभव की बात है शारीरिक मर्मों ~~स्पर्शों~~ के स्पर्श से बड़े भयानक परिणाम होते हैं। क्या बिना स्पर्श के प्रेम नहीं प्रकट होता? किसी बात को दस बार बोले तो उसके प्रभाव से उसे ही सोचने लगता

है और फिर उसे ही करने लगता है चाहे कैसी ही निर्लज्जता की बात क्यों न हो। यूरोप के विद्वानों में से धर्मशास्त्रों के आदिसंहिताओं को पढ़ें तो पता लगता है कि आचार मनुष्य के अन्दर ही विद्यमान है बाहर नहीं। काम को वश में करना चाहिए। इस वश से सब दोष वश में आ जाते हैं यह सब इन्द्रियों का विषय है, अन्य दोष एक२ इन्द्रिय के।

३ एकान्त सेवन

मनोवैज्ञानिक (Psychologists) कहते हैं कि हमें धर्माधर्म की कसौटी कोई नहीं पता लगती सिवाय इसके कि अन्तःकरण में उत्पन्न भय, लज्जा ही हो। मानसिक या आत्मिक अर्धांग जिन्हें न हुआ हो उन्हें भय, शंका, लज्जा अवश्य होते हैं। एकान्त सेवन में दो को इकट्ठे न रहना चाहिए। एक या तीन रहने चाहिए। अधिक में मन वाणी, कर्म पर दबाव रहता है।

४ भाषण

मनुष्य के पास इतनी बातें कहां हैं कि सदा ज्ञान की बातें करे। ज्ञान की बातें थोड़े काल में समाप्त करके शेष काल समालोचना में, निन्दा प्रशंसा में मनुष्य बिताते हैं। कभी २ विषय कथा होने लगती है। इसके विरुद्ध यदि जन सम्मति का ज़ोर हो तो विषय कथा नहीं हो सकती। ऐसे कामों में जनसम्मति बनानी चाहिए। बुरे बुरे कामों के लिए लड़ाई झगड़ों के लिए, ईर्ष्या द्वेष के लिए जनसम्मति तोड़ने की कोशिश करनी चाहिए। दो आदमियों को एकान्त एकान्त में इस ही लिए न होना चाहिए कि उसमें विषय कथा जारी होने की बहुत संभावना होती है। इस भाषण के व्यसन को अर्थात् निन्दित बोलने को और बहुत बोलने को बन्द करके यदि समय को अपने उद्देश्य के साधनों की पूर्ति में लगाया जाए और मनन में लगा जाए तो अभीष्ट उन्नति हो सकती है। विद्यार्थी लोग प्रायः कहा करते हैं कि हमें समय नहीं मिलता हम क्या

पढ़े और कौनसा समय विचार में लगाएं। यदि ब्रह्मचर्यावस्था में समय नहीं मिल सकता तो और कब मिलेगा। बहु आलस्यादि व्यसनों को दूर कर मितभाषिता को धारण करके "सुखार्थिनां कुतो विद्या। विद्यार्थिनः कुतो सुखम्॥" के सिद्धान्त को लक्ष्य में रखते हुए इस समय ज्ञान के एकत्रित करने में लगे रहना चाहिए।

५. परस्पर क्रीड़ा.

देश धर्म, जाति की रक्षा की तैयारी के लिए खेलें खेलने की आवश्यकता है। अतः क्रीड़ा तो अवश्य ही होनी चाहिए। परन्तु वेही क्रीड़ाएं खेलनी चाहिएं। हाथापाई की क्रीड़ाएं नहीं खेलनी चाहिएं। परस्पर एक दूसरे के गले में हाथ डाल कर आगे बढ़ते हैं, कभी गिरते हैं कभी लेटते हैं ऐसी क्रीड़ाएं न होनी चाहिएं। एक लेट जाए और एक उसके अंकस्थल का सहारा लेकर पड़ा हो ऐसी २ खेलों से घृणा होनी चाहिए और कभी न खेलनी चाहिएं। यदि कोई भाई ऐसा करे तो एक दूसरे की सहायता करके उन्नति करना भाइयों का जैसे धर्म होता है ऐसे ही तुम्हारी भी यह धर्म है कि अपने भाई को तुम ऐसा करने से रोक दो। मनुष्य को मखौलें खूब करनी चाहिएं, जिससे चित्त प्रसन्न रहे। हर समय उदासीन रहना ठीक नहीं। हास्यप्रद बातें करते हुए ध्यान रखो कि उसमें अश्लीलता न आने पावे। वही हास्यरस श्रेष्ठ है जिससे किसी को दुःख न हो और जो अश्लील न हो।

६. विषय का ध्यान.

पश्चात् विषय का ध्यान भी छोड़ दो

७ विषय का संग

जब विषय का ध्यान छूट जाएगा तो विषय का संग भी न रहेगा। ये आठ प्रकार के मैथुन हुए।

"सोच कर इस बात का आश्रय लूंगा" यह विचार ठीक नहीं। गिरते समय पहिले आश्रय लो फिर सोचना। अतः इन बातों पर अभ्यास झट से आरम्भ कर दो। एक बात मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि कई लोग विषय में फँसने के लिए मजबूर होजाते हैं, उसके उपर्युक्त कारण हैं पर आन्तरीय कारण उपस्थेन्द्रिय का ठीक न रखना है। उप-

स्येन्द्रिय की जैसी अवस्था रहनी चाहिए वैसी ही रहनी चाहिए। शौच के समय उपस्थेन्द्रिय को धो लेना चाहिए। यदि न धोया जाए तो वहाँ मैल जम कर irritation पैदा करती है और वीर्य-नाश होता है उसी मैल से वहां सूजन पैदा होती है और उस स्थान के मांस को काट डालना पड़ता है या वहां चीरा देकर उस स्थान को ठीक करना पड़ता है। कइयों की उपस्थेन्द्रिय पर चमड़ा ऐसा ढीला सा होता है कि वह उसके मुख को ढके रखता है पर न रहने देना चाहिए। शनैः२ उसे पीछे हटा देना चाहिए। इस कार्य में बड़ी सावधानी चाहिए नहीं तो स्पर्श-मात्र से irritation होकर वीर्य निकलना शुरू हो जाता है। जिनका स्वाभाविक हटा होता है वे पुरुष धन्य हैं।

सुगन्धित द्रव्य लगाना बिल्कुल निषिद्ध है। लोग समझते हैं कि सुगन्धी लगाने से, इतर आदि पदार्थ लगाने से दिमाग ठंडा रहता है और मनुष्य अधिक कार्य कर सकता है। परन्तु वस्तुतः बात इससे उल्टी है। दिमाग़ बिल्कुल कमजोर होजाता है। विषय कामना बढ़ती है। आज कल तो यह सभ्यता का एक अंग बन गया है। लोग अपने कपड़ों पर अपने बालों पर अपने रूमालों पर इतर छिड़के रखते हैं जिससे महक उठती रहती है और मनुष्यों के दिमाग़ कमज़ोर करती रहती है। कुछ भी विचार का काम करने से घबराहट होती है। लोग उस सुगन्धी से मज़ा लूट कर अपने जीवन का नाश कर लेते हैं। आज कल के प्रवाह से सबको बचकर रहना चाहिए। तुम्हारे एक उपाध्याय के उन्होंने बड़ी भूल की। मैं जानता हूँ कि कॉलिज में उनके आचरण अच्छे थे। उन्होंने इन सुगन्धियों का खूब प्रयोग शुरू किया परिणाम क्या हुआ - जुकाम हुआ अब दमे में पड़े हैं। एक वर्ष से उन्होंने मेरे कहने पर छोड़ा नहीं तो होने वाली अवस्था को कौन जानता है कि क्या होती। मुझे बाग़ लगाने के लिए उलाहना दिया जाता है कि तुम तो सुगन्धित के प्रयोग को मना करते हो फिर यह बाग़ क्यों लगा रखा है जिसमें चम्पा चमेली आदि सुगन्धित फूलों से महक

उठती रहती है। स्वाभाविक सुगन्धी जितनी मिले बुरी नहीं। परन्तु कृत्रिम सुगन्धी हानि कारक है। बहुत सारे पुष्पों से सुगन्धी एकत्रित करके एक थोड़े से तेल में मिलाकर उसको प्रयोग में लाना जोकि उचित मात्रा से अधिक मात्रा में, जिसे मनुष्य सहन नहीं कर सकता, अन्दर जाकर सिर में ~~काफर~~ दर्द, जुकाम, शरीर की दुर्बलता, छाती में दर्द, कब्ज विषय कामना आदि रोगों को उत्पन्न करती। प्रातः काल शुद्ध वायु में कुछ काल वाटिका में भ्रमण कर लिया जाए तो दिल कैसा प्रसन्न होता है। आदमी फिर दिन में कार्य प्रारम्भ करने के लिए अथवा पढ़ाई लिखाई में मन लगाकर दिन को अच्छी तरह व्यतीत करने के योग्य होजाता है। ब्रह्मचर्य तथा परमेश्वर में प्रेम की कोई हद नहीं। मानवीय कृत्रिम सुगन्धियों को छोड़कर परमेश्वर की दी हुई स्वाभाविक सुगन्धित वस्तुएं ही सेवनीय हैं वही लाभदायक हैं। जो मनुष्य कृत सुगन्धियां लगाते हैं। जब उस द्रव्य में से सुगन्ध उड़ जाती है तो उस द्रव्य के जमे रहने से महादुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है। जिससे दिल घबराते हैं और रोग उत्पन्न होते हैं।

स्वप्न दोष को रोकने के उपाय:—

१. रात्रि को हलका, थोड़ा भोजन।

२. दिन को भी भूख से अधिक न करना चाहिए। रात्रि को कम इसलिए क्योंकि उस समय मेदा अच्छी तरह काम नहीं करता।

अमेरिका में प्रौफेसर्स, विद्यार्थिगण तथा सैनिकगण थोड़े भोजन पर ही निर्वाह करते हैं। इससे वे दिन भर में कभी आलस्य में नहीं आते। सदा चुस्त और प्रत्येक कार्य ~~तैयार~~ करने को तैयार रहते हैं।

3. सोते समय हाथ, पांव, मुंह धोना चाहिए। गरमियों में ठण्डे पानी से और शीतकाल में गरम पानी से।

४. सोना किस प्रकार चाहिए इस पर विशेष ध्यान दो क्योंकि सोने की विधि के ठीक न होने से अजीर्ण हो जाता है और अजीर्ण से स्वप्न दोष होता है। कब्ज भी होजाया करती है।

पहिले बाईं करवट ऊपर करके सो जाओ। वायु यदि नहीं निकलता तो निकल जाएगा। मेदा अच्छी तरह काम करता प्र-

तीत होगा। पांच, छः मिनिट के बाद इससे थोड़ी देर सीधी करवट लेटे फिर तीन मिनिट के बाद बाई करवट ऊपर करके सोजाओ। किसी करवट में लगातार कई घण्टे पड़े रहना ठीक नहीं। जब किसी करवट में थोड़ा सा भी दबाव पड़ता मालूम हो तो करवट बदल लो। सीधा सोना अच्छा नहीं। इससे स्वप्न दोष होता है। सीधा सोने से हाथ छाती पर आजाते हैं इससे मनुष्य बहुत बड़बड़ाने लगता है अतः मनुष्य को सीधा न सोना चाहिए।

भोजन के अधिक खाये जाने से irritation के द्वारा जो स्वप्नदोष होता है वह भोजन के पचजाने पर नहीं होता। यह तभी होसकता है कि भोजन थोड़ा किया जाए। इन सोने के तरीकों पर चलने से कब्ज की बीमारी बहुत कम होती है।

यदि मेरा स्वास्थ्य अच्छा होता तो मैं तुम्हारे बीच में सोता। रात को बचपन में तुममें से कई दांतों से किड़किड़ किया करते थे, पैर सकेड़ कर पड़े रहते थे। रात को जाग २ कर उनकी टांगे सीधी की गई। ठीक प्रकार अभ्यास कराया गया तो ११ दिन के बाद ठीक होजाते थे।

५. बार २ भोजन न करना चाहिए। जब दिन में जो चीज़ मैं खानी शुरू करदी यह ठीक नहीं। एक बार जितना उचित भोजन करना है उतना कर लिया बार २ करना ठीक नहीं।

६. जब बुरे विचार आवें तो प्राणायाम करो तब बुरे विचार न आएंगे नहीं स्वप्न दोष होगा। यदि अब भी स्वप्न दोष बन्द न हो तो रात्रि को दो घण्टे में पच जाने वाले भोजन को खाकर रात्रि को स्वप्नदोष के समय फवारे के नीचे बैठकर १५-से २० मिनिट तक शीतल जल से स्नान करो। तो सब विचार दूर हो-जाएंगे। हमें पुनर्जन्म का स्मरण नहीं रहता नहीं तो हमारे हृदय कांपते रहें। यही दयानन्द ने भी कहा है।

३२ वर्ष हुए मेरी स्वयं यह अवस्था थी। आधा घण्टा पढ़कर सिर में चक्कर आने लगते थे। बड़े २ आदमियों में शराब की

प्रथा थी उनसे मुझ में भी यह आदत आगई। अन्य दोषों से तो मैं बचा हुआ था। लोग मेरी जवानी पर हँसते थे। पीछे जब मैंने शराब आदि पीनी छोड़ दी, मसाले आदि खाने छोड़ दिए। गुरुकुल में आने से 16 वर्ष पूर्व मैं सब कुछ छोड़ कर साधारण भोजन ग्रहण कर चुका था। तब अवस्था ठीक होगई थी। तुम भी चाहो तो तुम्हारी अवस्था भी बदल सकती है और तुम अधिक उन्नत हो सकते हो। वीर्य रक्षा करते हुए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो। 11 वर्ष के बाद सब गन्दे परमाणु बदल कर शुद्ध नए आ सकते हैं। अन्यथा, कायरता क्रूरता क्रम आकर घेर लेती हैं। अब मुझे निश्चय है कि तुम ठीक रहोगे।
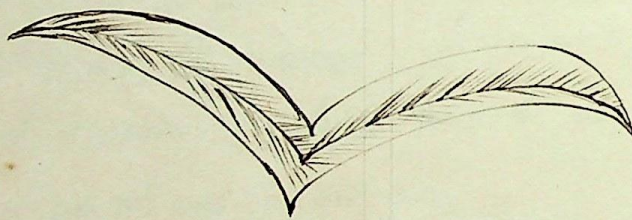
बड़ों की पूजा

श्री पं. देवराज जी 'मुनि'

बड़े आदमियों का नाम लेते रहने का आज कल एक फैशन हो गया है। कोई छोटा आदमी किसी बड़े आदमी का जितना अधिक नाम लेवे, जोर जोर से नाम लेवे वह उतना ही अधिक श्रद्धालु, भक्त और बड़ों की पूजा करने वाला समझा जाता है।

बड़े आदमी का केवल नाम लेने से छोटा आदमी कभी बड़ा नहीं बन सकता। बड़ा आदमी इसलिये कहाता है क्योंकि उसमें बड़प्पन है। जिस बात को सामान्य मनुष्य अपने जीवन में सिद्ध करना चाहते हैं, बड़ा आदमी उसकी सिद्धि के लिये प्रकाश देता है, रास्ता दिखलाता है। जो लैम्प प्रकाश नहीं देता, बुझा हुआ है या बिगड़ा हुआ है, उसकी कुछ कदर नहीं है, कदर तो उसी लैम्प की है जिससे प्रकाश निकल रहा है, उजाला हो रहा है।

जो मनुष्य बड़े आदमी का नाम लेते हैं और अपने जीवन में उस बड़े आदमी का कुछ असर नहीं दिखलाते हैं, वे अपने जीवन से स्पष्ट कर रहे होते हैं कि बड़ा आदमी जिसको बड़ा कहा जाता है, उसमें इतना भी बड़प्पन नहीं है कि उसके बड़प्पन की कुछ भी छाप उनके जीवन पर लग सके। वे अपने जीवन से सिद्ध करते हैं कि बड़े आदमी के बड़प्पन का प्रकाश उनको प्रकाशित नहीं कर सकता अतः वह उनकी दृष्टि में बड़ा नहीं है।

किसी की भी पूजा करने के लिये उस जैसा होना पड़ता है। प्रतिदिन उसके भावों से अपने अन्तःकरण को भावित करने से, अपने अन्तःकरण पर उसकी ज्योति का, उसके गुणों का मूल्य मान चढ़ाने से मनुष्य अवश्य अपने पूज्य के अनुरूप हो जाता है।

स्वामी श्रद्धानन्द अपने दैनिक जीवन में अपने व्यावहारिक जीवन में दृढ़ संकल्प के मनुष्य थे। हृदय रोग, आधा सिसी, और गुर्दों में दर्द की भयङ्कर बीमारियों के रहते हुए भी अपने प्रत्येक काम में वीर सैनिक का भाव दिखलाते थे, उसका एक मात्र कारण यह था कि कर्तव्य कर्म के लिये

उन्होंने अपने शारीरिक कष्ट की कभी परवाह नहीं की। एक बार की बात है कि उनको असह्य दांत की दर्द हुयी। उस दर्द में उन्हें बुखार भी रहा। सेवा के लिये आचार्य सुख देव जी ने महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की रात को बारी बान्ध दी। तीन बजे से पांच बजे तक मेरी बारी थी। दस मिनट पहिले ही मैं उनके बंगले में पहुंच गया। पिछली बारी वाले तो मुझे आता देख चले गये। मैं चुपचाप धीरे से कुर्सी पर बैठ गया कि महात्मा जी की नीन्द में बाधा न होजाये। मैंने विचित्र बात देखी कि तीन का घण्टा बजते ही महात्मा जी उठ बैठे। मैंने उनसे पूछा कि रात को दर्द का क्या हाल रहा? नीन्द आयी कि नहीं? उत्तर में उन्होंने इन्हीं शब्दों में कहा - "भाई! दर्द तो बहुत थी पर मैं तो चुपचाप पड़ा रहा। नीन्द भी नहीं आयी। मैं देखता था, ब्रह्मचारी आते थे, अपनी बारी पूरी करके चले जाते थे। मुझे तो आदत नहीं, अपनी तकलीफ दूसरे को कहूं और कष्ट दूं। अच्छा जाओ, अब तो मैं उठ गया, तीन बजे मैं उठ ही जाया करता हूं।"

इस घटना ने मुझ पर असर किया। मैंने स्पष्ट देख लिया कि बड़े आदमी और छोटे आदमी में क्या अन्तर होता है। बड़ा आदमी अपने कष्ट को कुछ नहीं मानता, दूसरों के कष्ट निवारण की उसे फ़िक्र रहती है। और छोटा आदमी दूसरे के कष्ट को कुछ नहीं गिनता, उसे अपने ही कष्ट निवारण की चिन्ता रहती है।

स्वामी जी के अन्तःकरण की यह उज्ज्वल वृत्ति उनके सारे जीवन में चमकती दीखती है। इस वृत्ति की प्रबलता के लिये उनके दैनिक जीवन में वे उज्ज्वल दीखते हैं। कष्ट सह कर भी व्रत का पालन, व्रत का पालन कहलाता है। कष्ट में भी व्रतपालन करने से मनुष्य मनुष्य बनता है, पक्का बनता है, समाज सेवक बनता है। स्वामी जी की यह उज्ज्वलवृत्ति क्या हमारे अन्धेरे अन्तःकरणों में उजाला करेगी? क्या उनके भक्त उनके उज्ज्वल जीवन के प्रकाश से अपने आपको प्रकाशित करके सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे कि वे उनके सच्चे भक्त हैं?

कौन बचा सकता है ?

पं. चन्द्रकान्त जी वे.वा.

आज दुनिया का महापुरुष गांधी अपनी जीवन की बाजी लगाने वाला है, किन के लिये? गरीब अस्पृश्य भाइयों के लिये। क्यों? उनके मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिये। कुछ दिन हुए यरोड़ा जेल में एक जगविख्यात आत्मा का उपवास किया गया था वह भी क्यों? अछूतों के हितों की रक्षा के लिये, डॉक्टर अम्बेडकर की स्वाभाविक मांगों की पूर्ति के लिये। इस समय यह प्रश्न है कि "महात्मा गांधी जी जैसे महान नेता के सामने इस मौके से बढ़कर हज़ारों ऐसे मौके आ सकते थे जिन मौकों पर कि वे अपने देह की बलि चढ़ाकर जाति की नसों में जोश भर सकते थे - फिर भी वे अछूतों की समस्या के सामने अपना सर्वस्व निछावर करने को क्यों तय्यार हुवे? उन्होंने अछूतों की समस्या को अपनी शहादत का लक्ष्य क्यों चुना?" इतिहास के विद्यार्थी इस रहस्य को समझ सकते हैं। जो जातियाँ स्वतन्त्रता के संग्राम में - विजय का सेहरा बांधना चाहती हैं वे अपने आप में संघटित हुआ करती हैं। जिस देश के निवासी अपने सामाजिक कातिलों तथा अत्याचारों से पीड़ित हों वे कभी भी देश की राजनीतिक आज़ादी नहीं ले सकते हैं। महात्मा गांधी यह बात समझ गये हैं। वे समझ गये हैं कि यदि भारत उन अत्याचारों से बचना चाहता है जो कि उस पर दूसरी जातियाँ कर रही हैं तो चाहिये उसको वे अत्याचार बन्द कर देने चाहियें जो कि वह अपने आप अपने भाइयों पर करता है। दूसरे शब्दों में यही बात लाला लाजपतराय का "unhappy India" भी ऐसा कह चुका है -

"Political ~~Struggle~~ subjection is the punishment of social evils and national crimes"

कोई भी देश तब तक फतेह हासिल नहीं कर सकता है जब तक कि वह अपने -

समाज को सुघठित न कर ले। भारत की स्वतन्त्रता की नौका आज इन्हीं भंवरो में अटक चुकी है। एक तरफ से सात करोड़ अछूत अपने आपको हिन्दु जात से अलग कर रहे हैं तो दूसरी तरफ मुसलमान लोग अपनी संख्या की वृद्धि में लगकर हिन्दु जात की जड़ को खोखला करना चाहते हैं। प्रतिदिन यह बात साफ होती जा रही है। लाखों रुपये और अमूल्य समय खराब करके भी बिलायत वाली गोल मेजपरिषद् के तीनों अधिवेशन क्यों सफल नहीं हो रहे। क्या उस असफलता के लिये हम गुनहगार नहीं। अगर आज शास्त्र शास्त्र के एक अक्षर को भी न समझने वाले केवल नाम धारी ब्राह्मण अपनी जाति के अभिमान में इतने मदमाते हों कि विज्ञान के विद्वान से विद्वान, गुणी से गुणी विजातीय मनुष्य को पशु से भी बदतर समझते हों तो क्या वजह है कि डा. अम्बेडकर की हिन्दुओं से अलग प्रतिनिधित्व मांगने की सलाह को क्यों अनुचित माना जाय? दोष हमारा है और मढ़ते हैं दूसरों पर। महात्माजी ने तो अपने चिर काल से के स्वप्नों से क्रियात्मक रूप देना शुरू कर दिया है। अस्पृश्य भाइयों को हरि-जन का रूप देकर उनके लिये अपना तन, मन, धन बलिदान करने की तैयारी की है। लोग कहते हैं कि उन्होंने ऐसा मैजिक किया है कि जो काम आर्य समाज ६० साल के अरसे में न कर सका वह उन्होंने ६ दिन के अन्दर कर दिया है। यह बात सुनने में रुचिकर प्रतीत होती है। लेकिन कोई भी विचारशील मनुष्य कह सकता है कि जो आग जो आग महात्मा जी ने भड़काई है वह न भड़क सकती यदि उससे पहिले बारूद तैय्यार न मिलता। यकीन रखिये कि यह बदनसीब कठोर हिन्दु जाति अपनी आंखों के सामने एक नहीं हजारों महात्मा गांधी को भूख से तड़प कर मर जाने देती यदि उसके दिल को समाज सुधारों ने कोमल न किया होता। यदि आर्य समाज ने ६० साल तक लगातार कोशिशें न की होती कोई भी आन्दोलन कभी भी एक दम सफल हो ही नहीं सकता है- इतिहास इस बात का साक्षी है। एक नहीं हजारों सच्चे आर्य अछूत कहलाने वाले भाइयों को गले लगाने के प्राण की बाजी भी दे चुके हैं। - क्या आपको जम्मू के वीर पं. धर्मवीर रामचन्द्र का इतिहास बताने की जरूरत है? जिन्होंने कि मेघों की शुद्धि के लिये अपनी आंखों के

बालू उलवा कर, अपना जीवन दीप बुझा कर भी उफ़ न की। क्या आप को रोपड़ के उस वीर सोमनाथ आर्य की फिर जीवन कहानी फिर याद करानी होगी जो कि अपनी वृद्ध माता के साथ प्यासा रह कर मर गया? क्या आपको स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन सुनाना पड़ेगा? जो मरते दम तक अछूतों के आंसुओं में खून बहाते रहे। उन की आहों में आह! आज यह ठीक है कि आर्य समाज अपने यौवन पर नहीं है, आज उस से जितनी आशा थी उतना कर्तव्य नहीं दिखा रहा, आज औरों को जगा कर आर्य समाज सो गया है। परन्तु जो काम इसने किया है और कर सकता है उसके लिये आर्य समाज को धन्यवाद तथा आशा के संदेश देते हैं

आज राजनीतिक दृष्टि से अछूतों को भले ही अधिक Seats दे दी गई हों। परन्तु इस में उन का अछूत पन दूर नहीं हुआ है। इस के विपरीत Government Government के Record में क्या, भारत की स्वतन्त्रता के लिखे जाने वाले इतिहास में अछूत पन का धब्बा अमिट होगया है। आज Seats लेने की दृष्टि से अनेकों भाई अपने को अछूत कह कर गर्व करते हैं। थोड़े से राजनीतिक लोगों के नाम पर यदि हिन्दु जात में इतना भारी भेद पैदा हो रहा है तो इस का दोष महात्मा गान्धी के किये गये निर्णय को न देकर हमें अपने ऊपर लेना होगा। महात्मा जी तो इस निर्णय से पूर्ण सहमत न थे। आज, सचमुच हिन्दु जाति ने अपनी कमजोरियों को इस महात्मा गांधी की आड़ में रख कर जो निर्णय होने दिया है वह इतिहास के पृष्ठों में काले अक्षरों में लिखा जायेगा। यही कारण है कि फिर महात्मा जी हिन्दु जाति के सामने अपनी आहुति दे कर प्रायश्चित्त करने को तैयार हुए हैं।

इस महात्मा को बचाने की हिम्मत अब किस में है? आज तीन चार मुख्य दल ही नजर आते हैं। सनातन धर्म सभा, मुस्लिम लीग, राष्ट्रीय महासभा दल (Congress) और आर्य समाज

इन मे से कौन इस सवाल का जवाब दे सकता है ? इन मे से कौन दलितो के दुखो को ठीक आइनो मे दूर कर सकता है ?

क्या सनातन धर्म सभा के पास महात्मा के बचाने का कोई उपाय है ? यदि सनातन धर्म का डंका बजाने वाले, शास्त्र के ज्ञान का ठेका लेने वाले शंकराचार्य आज भी महात्मा जी की मौत को नज़दीक देखते हुए भी फ़तवे दे रहे हो कि अछूत लोगो के लिये मन्दिर प्रवेश सर्वथा निषिद्ध है, "रघुपति राजा राघव राम पतित पावन सीता राम" के इन शब्दो को रटते हुए भी पतित पावन के अर्थ कोन समझ कर अपने परमात्मा की मूर्त्ति को इतना नाजुक बना रहे है कि जो हरि जनो की छाया से भी अपवित्र हो सकती है। अपनी सभा के नियमो तथा उपनियमो मे छुताछुत पर ही विशेष महत्त्व देते तो है तो वे महात्मा गांधी के सवाल का जवाब हरगिज नही दे सकते।

क्या मुस्लिम लीग महात्मा को इस आफत से बचा सकती है ? नही त्रिकाल में भी नही।

जहां पर कि हसन निजामी और आगाखां जैसे लोग रुपया बहा कर संघठित रूप मे Pan islamism का सन्देश देना चाहते है। हिन्दु जाति की जड़ खोखली करके अपनी संख्या की वृद्धि मे प्रयत्न शील है। जहां पर की कोकनाडा कोंग्रेस के सभापति पद से मौलाना मुहम्मद अली जैसे शख्स ऐसा कह सकते है कि ७ करोड़ अछूतो मे से ३½ करोड़ मुसलमानो को देदो और ३½ करोड़ अपने पास रक्खो। कैसी बरबाद है जैसी कोशिश जहां हो वहा पर ये आशा करना कि ये महात्मा गान्धी के सवाल का उत्तर देंगे वृथा है।

क्या कॉग्रेस के पास इसका जवाब है ?

कॉग्रेस के सामने इस समय अन्य अनेक प्रोग्राम है। कांग्रेस मे केवल महात्मा गान्धी

भी नहीं हैं पर मुसलमान और सनातनी भाई भी मौजूद हैं। कांग्रेस में आज ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो जन्म से वर्ण को न मानता हो। इस दशा में कांग्रेस भी पूरी तरह महात्मा के सवाल का जवाब नहीं दे सकती है।

क्या आर्य समाज के पास इस प्रश्न का उत्तर है?

यरोदा जेल से महात्मा गांधी ने स्वतः आर्य समाज को संदेश दिया है कि वह इस समस्या की तरफ ध्यान दे। इस से इतना तो स्पष्ट है कि अछूतोद्धार के कार्य को आर्य समाज आम रीती से कर सकता है। आर्य समाज के प्रमुख नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अमृत सर की ३४वीं कांग्रेस में स्वागत कारिणी के प्रमुख की हैसियत से दिये भाषण में यह साफ २ कहा था कि "६ करोड़ हमारे दिल के टुकड़े हैं। इनको बिना मिलाये स्वातन्त्र्य संग्राम में विजय नहीं हो सकती है।" उन्होंने कांग्रेस के प्लेटफॉर्म से भी ऐसे प्रस्ताव पास करवाने का यत्न किया था। स्वामी श्रद्धानन्द ने मरते २ भी परमात्मा से प्रार्थना की थी। फिर भारत में पैदा होकर शुद्धि और संगठन के बचे हुए काम को पूरा करूंगा। इसलिये यह बात विश्वास से कही जा सकती है कि आज जो समस्या हमारे सामने है उसका उत्तर स्वामी श्रद्धानन्द के पास है। मालवीय जी एक बार भालावाड़ में गये वहां उन्होंने व्याख्यान देते हुए कहा कि शास्त्र शास्त्र अछूतपने को नहीं मानते। व्याख्यान सुन कर अब्राहणों ने कहा कि मालवीयजी आप सचमुच महात्मा हो आप का कहना बिलकुल सही है पर हमारे दिल के

दर्दे दिल की दवा आपके पास नहीं वह तो स्वामी श्रद्धानन्द के पास है। थोड़े ही दिन के बाद स्वामी जी वहां जाते हैं और उनके खान पान सब में सम्मिलित होकर उनकी शुद्धि करके उनको अपने में

मिलाते हैं। सच्चा उत्तर तो स्वामी श्रद्धानन्द तथा आर्यसमाज दे सकती है। जो लोग कर्म से वर्ण मानते हैं उनसे बढ़कर इस समस्या का हल किसे हो सकता है। इसका सच्चा हल आर्य समाज के ही पास है।

महापुरुष श्रद्धानन्द

श्री सुधाकर 'अमृतालंकार'

इस नवीनयुग में जनसंसार के अन्यान्य राष्ट्र राष्ट्रीयता के रंग में रंगे जा रहे थे। भारतीय राष्ट्र को भी एक राष्ट्रीयता की आवश्यकता थी। राष्ट्र के विविध विभागों में राष्ट्रीयता के मन्त्र को फूंक देने वाले वीर की आज राष्ट्रीय हृदय आराधन करता है। उस अमर शहीद श्रद्धानन्द का जीवन संगीत राष्ट्रीयतामय था। राष्ट्रीय धर्म के महान् आचार्य स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों व आदर्शों का अनुसरण करते हुए उस ने अनुभव किया था कि देश में प्रचलित शिक्षा अधूरी है। इसमें राष्ट्रीयता की गन्धतत्व नहीं। उस शिक्षा का एक मात्र ध्येय जो गुलामी की परम्परा को जारी रखने के लिये उपयुक्त गुलाम हृदय शिक्षितों को तैय्यार करना ही है। उस ने नवीन शिक्षा पद्धति की स्थापना की। शिक्षा को राष्ट्रीयता के रंग में रंग दिया। वस्तुतः प्र प्रचलित शिक्षा में भारतीयता का अभाव था। राष्ट्रीयता की स्थापना के लिये राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करने के लिये आवश्यक है कि राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा देश के भावी नागरिकों पर निश्चित और एक तरह के संस्कारों को डाला जावे। राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा ही भारतीय राष्ट्र के अन्दर अत्यधिक-मात्रा में व्याप्त प्राचीन कहे जाने वाले आदर्शों व सिद्धान्तों के प्रति अन्ध-श्रद्धा के भावों एवं इस के विपरीत पाश्चात्य शिक्षा तथा पाश्चात्य शासन के प्रभाव से प्रभावित नवयुवकों-भावी नागरिकों की भारतीय संस्कृति सभ्यता एवं आदर्शों के प्रति घृणा तिरस्कार एवं तुच्छता के भावों को हटाया जा सकता है। अमर स्वामी आदर्शवादी थे। उन के राष्ट्रीय हृदय ने भारत को शक्तिमान् बनाने के लिये शक्ति संग्रह के लिये गुरुकुल की स्थापना की थी। सारे राष्ट्र और नवीन सभ्यता के निर्माण के लिये नवीन उत्पादक शक्ति की आवश्यकता होती है। उन्हों ने उस शक्ति को, उस जीवन सन्देश को भारत में उज्जीवित किया जो शक्ति प्राचीन अमरता के सन्देश की प्राचीन सभ्यता की पुनः प्रतिष्ठा है उस सन्देश को जो अतीत होते हुए

भी जीवन और विश्व की सादगी से परिपूर्ण है। उन्हों ने देश की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखते हुए पाश्चात्य और पौर्वात्य के उचित संमिश्रण का उच्चतम आदर्श अपने जीवन में कार्यरूप में परिणत कर दिखाया था। और ने यह सिद्ध कर दिया कि यदि देश के नवयुवक स्वतन्त्रता के पवित्र वायुमण्डल में विचरना चाहते हैं तो उन को आधुनिक विज्ञान और प्राचीन भारतीय आदर्शों के उपसन्देश को एक साथ समझ कर उन को अपनाना चाहिये। वस्तुतः हमारे पक्ष अन्ध-श्रद्धा के धूएं ने स्वावलम्बिनी आत्मज्योति प्रकाशिनी बुद्धि के दीपक को प्रायः बुझा सा दिया है और हमारी आंखें भी दुर्बल हो गई हैं। हमारे ज्ञान निधियों ने सब सद्ग्रन्थों पर धूलि जम आने दी है अथवा स्वयं जमा दी है। इसलिये पोथी हमारी और आंखें हमारी होती हुई भी, उन की धूल पूंछने के लिये उन का अर्थ समझने के लिये उपस्कार लालटेन तथा उपनेत्र इत्यादि पश्चिम से लेना पड़ता है। पर यह याद रखना कि दीपक और उपनेत्र द्वारा अपनी पुस्तक पढ़ो और अपने ही नेत्र काम में लाओ। न अंधश्रद्धा पूर्व की करो न पाश्चिमकी। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम की शक्ति का परस्पर मेल होने से उत्कृष्ट सभ्यता का उद्गम एवं प्रसार होगा। जिस राष्ट्र में भेद बुद्धि का रोग अंग २ में व्याप्त हो गया हो जो असंख्य जाति उपजातियों के विभिन्न धर्मध्वजियों के निरन्तर कोलाहल और कलह से क्षीण हो गया उस का पुनरुद्धार अंग २ में अभेद बुद्धि का प्रचार किये बिना नहीं हो सकता है। हिन्दु जाति ने अपने एक बड़े हिस्से को अपने अंध अहंकार का शिकार बना कर अपने से बिल्कुल पृथक् कर दिया है। मनुष्य समाज में समानता भ्रातृत्व एवं स्वतन्त्रता के आदर्शों को कायम रखने के बजाय जब हम समाज के भिन्न २ अंगों में भेद बुद्धि को उत्पन्न कर देते हैं समाज के कुछ लोगों को हीन कह कर पुकारते हैं तभी हमें समाज में अवनति का ख़ुफ़ा लगा नज़र आता है। आज हिन्दुस्थान में अछूत कहे जाने वाले लोगों का एक ऐसा दल है जिस की संख्या तो अधिक है पर वे ही वा हम भूत हैं उन्हें मनुष्य बनने का अधिकार नहीं। देश की सम्पत्ति के उद्भव से वे प्रतिपालित होते हैं सब से अधिक उन्हीं का श्रम होता है। पर सब से अधिक उन्हीं का अपमान होता है। बात २ पर वे ठुकराये

जीवन यात्रा के लिये जितनी सुविधायें हैं उन सब से वञ्चित रहते हैं। वे सभ्यता की ठोकर हैं। इन बेचारों को सबकी घृणा मिलती है और उन बेचारों के ऊपर तेल टपकता रहता है। राष्ट्र की सच्ची उन्नति के इनका उद्धार अत्यावश्यक है। जब तक हम अपने ही देशभाइयों को, अपने राष्ट्र के एक हिस्से को परतन्त्र बना कर रखते हैं, उनको मनुष्य के स्वाभाविक अधिकारों सुविधाओं एवं मौकों से वञ्चित रखते हैं तो हमारा क्या अधिकार है कि हम स्वतन्त्र होने का दम भरें। श्री स्वामी जी इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि जब तक हिन्दुओं में से अछूतपन के कलङ्क को नहीं मिटाया जा सकेगा। हिन्दुओं का संगठन व सार असम्भव है और जिसके बिना राष्ट्रीय उन्नति भी असम्भव है। वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि यदि यही अवस्था रही तो एक दिन आवेगा जब कि अछूत कहे जाने वाले लोग अपने को हिन्दू जाति से अलग कहने लग जावेंगे और हिन्दुस्तान में एक नयी जाति बन जायेगी। अतः एव उन्होंने अपने जीवन का पिछला समय इन्हीं अछूतों के उद्धार में बिताया।

आज जब संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गान्धी के नेतृत्व में देश में से अछूतपन के कलंक को सर्वथा धो डालने का प्रयत्न हो रहा है, आइये हम सब बन्धु उस राष्ट्रीय वीर शहीद श्रद्धानन्द के पुण्य जन्म को याद करें और उनके दिखाये रास्ते पर चलकर उन जैसी दिव्य शक्ति और लगन को धारण कर हिन्दुस्तान में से अछूतपने के चिरकालीन और अत्यधिक व्यापक कलङ्क को दूर करने के कार्य में अग्रसर

संन्यासी का राज्य

गंगा की पवित्र धार से परिवेष्टित और हिमाचल की गोद में चैन से पड़े हुए पुनीत गुरुकुल को देखने एक बार भारत के वायसराय आये।

हमारे कुलपिता ने आगे बढ़ कर अपने अतिथि का स्वागत किया।

× × ×

शाम का समय था। कुलपिता अपने मान्य अतिथि को गुरुकुल दिखा रहे थे, इसी बीच वे कार्यालय के सम्मुख बने हुए भारत के नक्शे के समीप पहुंच गये।

कुलपिता नक्शे पर एक जगह इशारा करते हुए बोले—! "आपकी राजधानी "यह" ही है"।

वह हंस पड़ा और चारों तरफ इशारा करते हुए बोला —! "और, आपकी राजधानी यह सारी है।"

× × ×

प्रकृति ने भी इसका समर्थन किया – पास के आम के वृक्ष का एक२ पत्ता इशारे हिल उठा मानो वह भी यही कह रहा हो कि–! "निर्मोही सन्यासी का राज्य असीमित है"।

— श्री विनयभार्व.

प्रियपाठक वृन्द।

आज प्रातःस्मरणीय कुलपिता के प्रति अपने हृदयोद्गार प्रगट करना प्रत्येक कुलवासी का महान कर्तव्य है. "क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः" कालिदास के इस कथन के अनुसार कौन उस विशालमूर्ति के गुणों को एक क्षुद्र से लेख में सीमा-बद्ध कर सकता है तथापि "श्रद्धा दिवस" के दिन अपने कुलपिता के चरण कमलों में श्रद्धा-उपहार देना अपना कर्तव्य समझ कर कुछ शब्द अवश्य लिखूंगा :—

श्री स्वा॰ दयानन्द के उपदेशों से प्रभावित होकर नानकचन्द घर में आते हैं और अपने लाडले पुत्र मुन्शीराम को सम्बोधन करके कहते हैं कि "बेटा! आज यहां कोई दयानन्द नामका स्वामी आया हुआ है जो हमारी आजकल की प्रचलित प्रथाओं को अन्धविश्वास और ढोंग कहकर खण्डित करता है। मूर्ति पर मिष्ठान्न चढ़ाने को केवला ब्राह्मणों का पेट भरना बताता है। जो उससे बातचीत करता है वह उससे प्रभावित होकर उसी के सिद्धान्त को स्वीकार किए बिना नहीं रह सकता" पिता की बातें सुनकर बेटे को बड़ा आश्चर्य हुआ और उस स्वामी के दर्शनों के लिए उत्सुक हुआ। मुन्शीराम पिता जी से कहता है तो मैं भी आज उनके दर्शन करने जाऊंगा और देखूंगा कि मेरी युक्तियों का वे किस प्रकार खण्डन करते हैं यह सब बातें ~~.....~~ सोच कर पक्का वह घर से चला। परन्तु जादूगर की जादूगरी पर किसका क्या बस चलता है? बड़े २ दांव पेच भी उसके सामने ढीले पड़ जाते हैं। बस क्या था महर्षि के फन्दे में आगए जो कुछ ~~कर~~ भी सोच कर चला था वह क्रियात्मक रूप में न आ सका उसे क्या पता था कि जिस पर मैं वार करने चला हूं उसका कार्य भार भी मुझे उठाना पड़ेगा। जादूगर दयानन्द ने कोई ऐसी अमोघ शक्ति छोड़ी जिसके प्रहार से मुन्शीराम के हृदय के किवाड़ खुल गए। जाते समय मुन्शी राम जितने बुरे विचारों को लेकर चले थे लौटते समय उन्होंने उतने ही भले विचारों को लेकर घर में प्रवेश किया।

अब क्या था दिन प्रतिदिन आप की आर्यसमाज के प्रति श्रद्धा बढ़ती गई। शीघ्र ही आप जालन्धर आर्यसमाज के प्रतिनिधि होकर आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब में सम्मिलित हुए। तत्कालीन स्कूलों और कालिजों की बुराइयों को देखकर आप से न रहा गया। गुरुकुल का प्रस्ताव आर्य प्रतिनिधि सभा में रखा। कहां वर्तमान युग और कहां गुरुकुल

श्री भीमसेन जी ११.

का स्वप्न। परन्तु आपके विचार में यदि कहीं दयानन्द का मिशन पूर्ण हो सकता थो तो वह गुरुकुल ही था और पूर्ण निश्चय कर लिया कि अब गुरुकुल खोल के ही रहूँगा। चढ़ा जोश, काम शुरु किया, आपत्तियाँ आईं मुसीबतें झेलीं पर ये सब कुछ कृतप्रतिज्ञ के लिए चट्टान पर टकरा कर खाकर छिन्न भिन्न हो जाने वाली तरङ्गमाला के समान था। जब तक प्रण पूरा नहीं हुआ तब तक न भोजन भला, न नींद। दिन भर यही चिन्ता दिल में रहती थी कि किस प्रकार अपने काम में सफल हूँ। कभी कभी जोश में आकर मनुष्य बड़े बड़े संकल्प कर करता है परन्तु ये सङ्कल्प जितने वेग से उत्तेजित होते हैं उतने ही वेग से और उतनी ही प्रतिक्रिया से उत्तुङ्ग तरङ्गों की भाँति बैठ जाते हैं। "उत्पद्य हृदि लीयन्ते मनुष्याणां मनोरथाः"। परन्तु स्वामी श्रद्धानन्द वायु के झकोरों से छिन्नभिन्न होने वाला मेघ न था। गुरुकुल के लिए 2000) आर्य प्रतिनिधि सभा ने दिये। परन्तु इस से क्या बन सकता था प्रतिज्ञा की कि जब तक 30000) इकट्ठा न कर लूँगा तब तक घर में पैर न रक्खूँगा। स्वा. श्रद्धानन्द जैसे मनुष्यों के लिए यह रुपया इस युग में इकट्ठा करना बाएँ हाथ का खेल है परन्तु इस युग में जब देश के लोग दुर्भिक्ष से पीड़ित हो रहे थे और तिस पर भी इस युग में जब गुरुकुल के स्वप्न लेना पागलपन समझा जाता था सौ रुपया इस काम के लिए इकट्ठा करना एक बड़ा वीरता का काम था। परन्तु कृतप्रतिज्ञ के लिए क्या कठिन है? उस के लिए तो "अङ्गन वेदी वसुधा, कुल्या जलधिः, स्थली च पातालम्। वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य"। सात मास में ही इस रुपया इकट्ठा होगया। अब भला व्याघ्र सिंह और हाथियों से घिरे हुए भयावह जङ्गल में रहने के लिए कौन अपने पुत्रों को समर्पित करता? जहाँ गए वहां फटकार सुनी, परन्तु श्रद्धानन्द के धैर्य को चकना चूर करने के लिए यह सब पर्याप्त न था। "न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" इस वाक्य को हृदय के अन्दर दृढ़ करके वह निरन्तर अटूट उत्साह से काम में व्यापृत रहे। 2 मार्च 1902 को नीलगिरी और नील धारा के बीच अपने विजयस्तम्भ को गाड़ दिया। ऐसे भयावह जङ्गल में छोटे 2 बच्चों की अपने ऊपर जिम्मेवारी लेकर वे किस प्रकार चैन से रह सकते थे। किसी हिंस्र जन्तु के कारण यदि एक भी दुर्घटना होगई तो सब प्रयत्न मटियामेट हो जाएगा, इस को सोच कर रात को

भी जब सब कुम्भकर्णी नींद में सो रहे होते थे आप कई बार एक लैम्प और डंडा लेकर चक्कर लगाते दीखते थे। आप हमेशा इस चिन्ता में रहते थे कि किसी भी प्रकार इस गुरुकुल पर कोई भी कलङ्क न आने पावे। यद्यपि आपने १९१६ में संन्यास लेकर इस कुल से बाह्य विदाई ली पर आपका हृदय सदा यहां के चक्कर काटता था। १९१९ में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और आप अभी अमृतसर में थे कि आपको गुरुकुल के सञ्चालकों की तरफ़ से प्रार्थना हुई कि आप गुरुकुल को संभालें। यद्यपि राष्ट्र की बेड़ियों ने स्वामी जी को अच्छी तरह जकड़ा हुआ था परन्तु गुरुकुल के प्रेम के आगे यह सब कच्चे धागे के समान थी। गुरुकुल, स्वामी जी के सामाजिक नैतिक तथा धार्मिक आदर्शों का केन्द्र था। हृदय के प्रिय सब आदर्शों को आप गुरुकुल में परिणत करना चाहते थे। जब गुरुकुल की रक्षा के नाम पर आप को बुलाया गया तो आप समाज सेवा के बाह्य बन्धनों को छोड़कर गुरुकुल में चले गए। गुरुकुल के प्रति स्वामी जी को कितना प्रेम था उसके लिए और कौन सा सुस्पष्ट उदाहरण रखा जा सकता है।

आपने केवल धार्मिक-सीमाबद्ध हो कर ही काम नहीं किया अपि तु देश के प्रत्येक पहलू में आपने पूरा भाग लिया। जिस प्रकार आर्यसमाज का बच्चा २ आपके उपकारों नहीं भूल सकता उसी प्रकार प्रत्येक देशवासी के हृदय पर भी आपका शुभ नाम तब तक अङ्कित रहेगा जब तक सूर्य और चान्द उदित और अस्त होते हैं। राजनैतिक क्षेत्र में इस उत्साही व्यक्ति के उतरने पर वाइसराय भी कांप गया कि गान्धी के साथ हाथ जोड़ कर पता नहीं यह क्या २ कर डाले। १९१९ में लार्ड चैम्सफोर्ड ने भारत सचिव माण्टेगू को एक पारिभाषिक तार लिखा जिसका अनुवाद निम्न है :-

" आन्दोलन खूब चल रहा है। महात्मा मुन्शीराम ने, जिसने अब स्वामी श्रद्धानन्द नाम रख लिया है, गान्धी के साथ हाथ जोड़ लिए हैं, बहुत काल तक वह प्रसिद्ध धार्मिक नेता रहा है और सामाजिक सुधार में भी उसने बहुत नाम पैदा किया है अब मालूम होता है कि वह राजनैतिक आन्दोलन में भी मशहूर होना चाहता है। अभी देखना है कि उसमें सहन करने

का कितना पराक्रम है। उसका बड़ा लड़का कुछ काल तक प्रसिद्ध राजनैतिक विप्लवकर्त्ता .... का ब्यूनो एरिस में अतिथि रहा है। उसका छोटा दिल्ली में एक गवर्नमैंट विरुद्ध देशी भाषा का गरम दैनिक निकालता है। हम प्रतीक्षा करते हैं कि क्या होता है" इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी के उत्साह का वाइसराय पर भी कितना प्रभाव था। १९२१ में गान्धी ने जब असहयोग आन्दोलन की रणदुन्दुभि बजाई और आप ने देश की रक्षा के लिए? जब युवक लोग "मैं पहले मैं पहले" की पुकार मचाते हुए आगे बढ़ने लगे और ज़रा २ से अपराध में जेलों ठूंसे जाने लगे। ऐसे समय में पर्वत की तलहटी में बाँका क्षत्रिय कैसे रह सकता था। अपने देशभाईयों की पीड़ा को असहानुभूति की दृष्टि से कैसे देख सकता। रणभेरी सुनते ही बब्बर शेर की तरह दहाड़ता हुआ 'अड़ा ए मैदान' में आया और अपनी अतुल धैर्य शक्ति से विरोधियों के कई बार ऐसे छक्के छुड़ाए कि वे दंग रह गए। कांग्रेस के प्रत्येक कार्य में आपने भली भाँति हाथ बंटाया। अहमदाबाद कांग्रेस में पुलिस के एक भी कर्मचारी के नहोने पर जो इतना

अच्छा प्रबन्ध रहा इसका सम्पूर्ण श्रेय श्री स्वा. श्रद्धानन्द जी को है। इस को प्रत्येक अहमदाबाद कांग्रेस में गया हुआ आदमी अच्छी तरह जानता है। श्रीमन के कथनानुसार दिल्ली के एकता सम्मेलन की सफलता के कारण का बहुत बड़ा कारण स्वामी श्रद्धानन्द जी की उदारता थी॥ १९२२ में सिक्खों पर किए गए अत्याचारों से जब उनकी करुण क्रन्दना का आर्तनाद भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक गूंज रहा था। यह गूंज दिल्ली में भी पहुँची। बस क्या था! शीघ्र ही रणक्षेत्र में जा दमके और परिणामत: ६ मास की जेल को आपने सहर्ष बिताया। आज भी प्रत्येक अकाली सिक्ख आपके नाम पर श्रद्धा की मालाएँ चढ़ाता है। तदनन्तर आपने शुद्धि के काम को अपने हाथ में लिया। यह काम कितना सफल हुआ इस बात का बड़ा भारी प्रमाण यही है कि आपकी मृत्यु एक क्रूर घातक मुसलमान से हुई। वह जैसा अन्त चाहते थे परमात्मा ने उन्हें वैसा ही दे दिया। परमात्मा की लीला अद्भुत है। जहां एक मुसलमान ने उन्हें मौत के मुंह से बचाया और वहां दूसरे ने तमंचे के घाट उतार दिया। परमात्मा अपनी लीला को ऐसे ही अद्भुत रूप में प्रगट किया करता है।
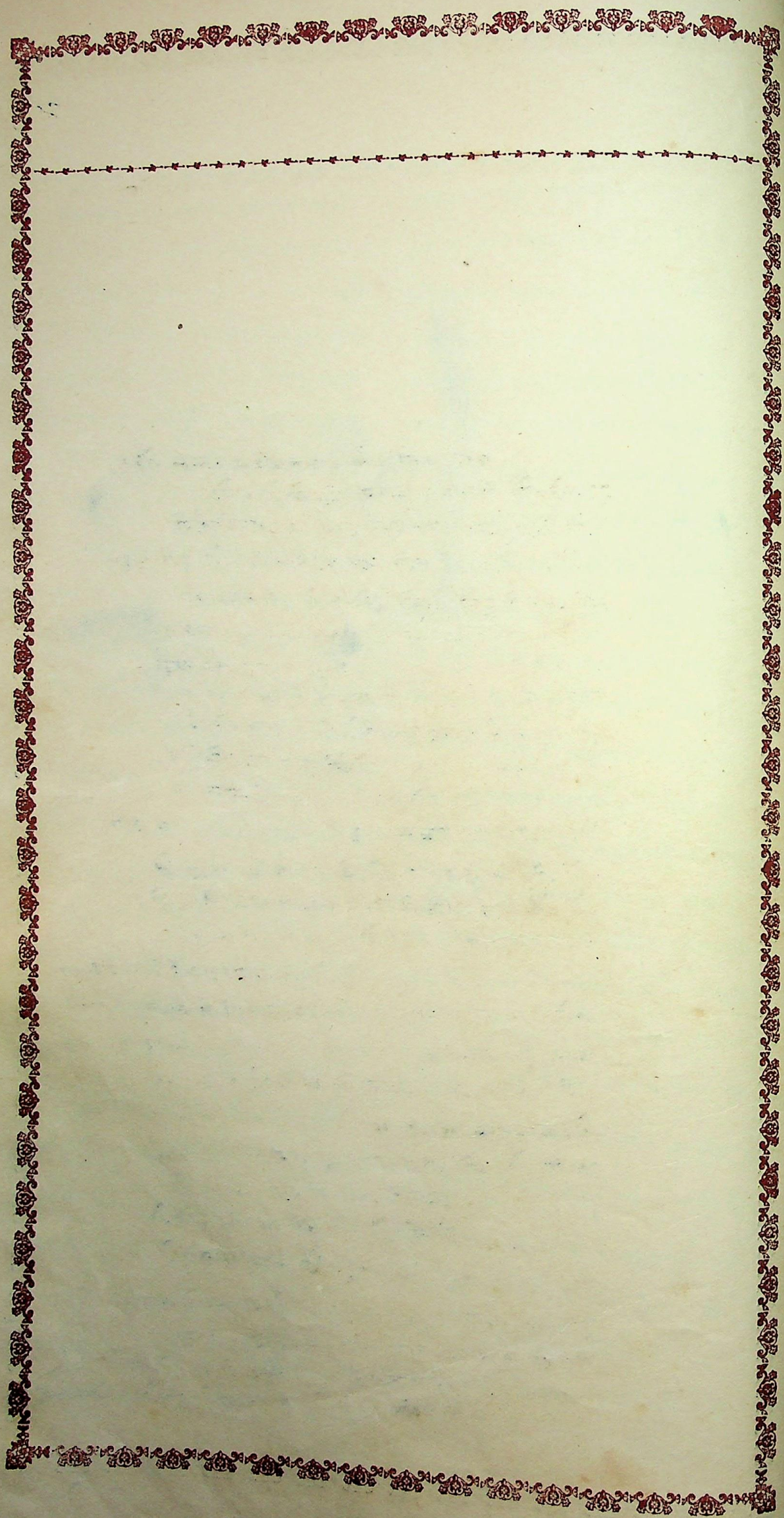
तारा

इस अनन्त पथ अन्तरिक्ष के अथक पथिक उज्वल तारे!
दूर खड़े क्यों झिलमिल झलक दिखाते हो प्यारे!
तुम्हें निहार निहार एकटक हारीं हा अँखियाँ मेरी
आओ नभ से उतर हे सखे पल भर अब न करो देरी ॥१॥

इसी ध्यान में तुम्हें देखते हुवे मुझे युग बीत गये
पर हे प्रकट-रहस्य बने हो तुम अधिकाधिक नये नये।
भूल गये क्या वह शैशव की मधुर मधुर स्वर्गीय घड़ी
चाव भरी जब दृष्टि हमारी आपस में थी प्रथम पड़ी ॥२॥

तुम संध्या के सुखद अंक में मेरे लिये मचलते थे,
मैं था जननी की गोदी में दोनों हृदय उछलते थे।
मैं चुपचाप पड़ा कितनी ही बातें तुमसे करता था
और तुम्हारा वह मुसकाना मुझे मोद से भरता था ॥३॥

ज्यों ज्यों उन सुखमय बातों के संग वे दिन काफूर हुवे
त्यों त्यों किसी शक्ति से खिंच कर हम भी इतनी दूर हुवे।
खड़ा हमारे बीच आज तो विपुल अन्तरों का संसार
क्या हम सचमुच बदल गये हैं, अथवा यह भ्रम है निस्सार ॥४॥

तुम्हें देख कर आज अचानक एक हृदय वीणा का तार
झनक उठा उत्कण्ठित सा हो करने लगा मधुर झंकार।
इसी लिये इस शान्त प्रान्त में आ बैठा हूँ मैं इस रात
छोड़ छाड़ सब झंझट झगड़े तुम से करने को दो बात ॥५॥

तुम क्या हो, क्यों जाग जाग कर सारी रात बिताते हो
घूम रहे किसकी पूजा में; किसको राह दिखाते हो।
क्यों आते हो, क्यों जाते हो, क्यों जा कर फिर आते हो
किससे खेलो आँख मिचौनी, रूठा कौन-मनाते हो ॥६॥

फूल उठा नन्दन में सुरतरु, खिले हो क्या उसके फूल
फैल रहे या धवल फेन हो सुन्दर सुर सरिता के कूल
किसी विरहिणी की नयनों के बरसे आँसू हो अनमोल
मुक्त, विधाता की [struck] लिपि के या अक्षर हो तुम गोलमटोल ॥७॥

दिव वधुएं शतरञ्ज खेलती उनकी गोट रुपहरी हो
स्वर्ग गये पुण्यात्माओं की अथवा दिव्य कचहरी हो।
रची शची ने चारु आरती, उसकी दीपक ज्वाला हो
किसी प्रेमिका की या गूंथी अमल मालती माला हो ॥८॥
सुभग यामिनी रूप कामिनी की नयनों के ज्योति हो
अमर पुरी की चारु चांदनी की झालर के मोती हो।
जगमग करते, प्रकृति नटी के कानों के हो क्या कनफूल
चरखा कात रही बुढ़िया की बिखर गई अथवा हो तूल ॥९॥
कुछ भी हो तुम मेरे आगे चमको इसी तरह हर रात
मैं न चाहता भेद तुम्हारा, मेरे लिये रहो अज्ञात।
या, यदि तुम भी मुझ जैसे ही किसी लोक के नटखट बाल
तब तो आओ घुल मिल जावें खेलें हॉकी या फुटबाल ॥१०॥
क्या करते हो साथ खेलते से तो नहीं तुम्हें इन्कार
भोग रोग से भरी भूमि पर आना है पर अस्वीकार।
कहां तुम्हारा घृणित लोक है पाप ताप परिपूर्ण असार
कहां हमारा दिव्य देश है पुण्य शान्ति सुख का आगार ॥११॥
जरा मृत्यु, भय दुःख नहीं हैं नहीं शोक की छाया है
नहीं द्वेष का लेश, क्लेश मय जहां न नश्वर काया है
उस प्रकाश मय अमर लोक में करते हैं हम सदा विहार
क्यों पृथिवी पर उतर उठावें विपदाओं का भारी भार ॥१२॥
यह देती वह परदेसी है मैं गोरा तुम हो काले
आपस में ही तुमने कितने ऐसे भेद बना डाले।
मुझे बुला कर दूर देश ले दुर्गति ही करवाओगे
आपस में मिल नहीं खेलते कैसे मुझे खिलाओगे ॥१३॥
क्षमा करो, बस दूर दूर ही रहें, इसी में है आनन्द
मैं खुश होऊं तुम्हें देख कर, रहा करो तुम मुझ पर छन्द।
क्षुद्र देश के बन्धन में बंध विपुल हृदय होते हैं क्षुद्र
सीमित हो जाते हैं चित्रित चित्र फलक में व्योम समुद्र ॥१४॥
खूब खूब! इस सुन्दर भाषण पर तो तुम्हें बधाई है
किन्तु अटपटी बात तुम्हारी मुझको समझ न आई है।
कुछ भी अच्छा बुरा नहीं; ये भेद भावना लाती है
द्रष्टा की। अपनी ही प्रतिमा दर्पण में खिंच जाती है ॥१५॥
जहां पराजय के पीछे जय, प्रणय कलह के पीछे मेल
जहां मृत्यु के पीछे जीवन, जहां काम के पीछे खेल।
जहां निराशा में आशा है, दुख में सुख है छिपा महान
अन्धकार में भी प्रकाश है, छिपी आंसुओं में मुसकान ॥१६॥

प्रभु की देख विभूति एक भी दिनकर जहाँ लजाता है
लगे देखकर चार चाँद, यह चाँद जहाँ छिप जाता है।
प्रभु की सर्वोत्तम कृति मानव गिन कर विघ्नों को न समक्ष
गिरता पड़ता चढ़ा ~~जाता है~~ रहा जहाँ पूर्णता को कर लक्ष्य ॥१६॥

गिर कर चलना जहाँ सीखते, बच्चे करते हैं अभिमान
भय को गले लगा लेते हैं उच्चाकांक्षी जहाँ जवान।
पाकर कठिन परिश्रम का फल बूढ़े करते हैं विश्राम
मर्त्य लोक वह कर्म भूमि है स्रष्टा की रचना अभिराम ॥१८

परिवर्तन है जहाँ सदा ही, सब कुछ है सुख मूल जहाँ,
दोषों में गुण भरा हुआ है काँटों में है फूल जहाँ।
जहाँ दुख के बाद तृप्ति है तिरस्कार के पीछे मान
नित्यतृप्त! हो तुम्हें वहाँ के वैभव का कैसे अनुमान ॥१९॥

जीवन का संघर्ष नहीं है, जहाँ जीत या हार नहीं
कोई भी कर्तव्य नहीं है तथा जहाँ अधिकार नहीं।
अपनी सत्ता जहाँ न रहती, जड़-चेतन हैं एक समान
ऐसे हैं अपवर्ग स्वर्ग, तो कैसा होगा सर्व श्मशान ॥२०॥

रण क्षेत्र में आगे बढ़ते सैनिक के मन में उत्साह
कैसा लहराता है, कवि का हृदय न पाता उसकी थाह।
किन्तु विजय के पीछे सारा उड़ जाता है वह आनन्द
रह जाते हैं बस पीछे तो व्रण थकान या करुणाक्रन्द ॥२१॥

इसी समय सहसा नभमण्डल हुआ प्रकाशित सूर्य समान
आँखें झपक गईं क्षण भर को टूट गया तब मेरा ध्यान।
तारा टूटा तारा टूटा- मचा दिया बच्चों ने शोर
पता नहीं मैं रहा देखता कितनी देर खड़ा उस ओर ॥२२॥

श्री पं. वागीश्वर जी विद्यालंकार

वरदान

मन अमलिन मम तन बलमय हो
मां मेरी करनी से तेरा
मुख उज्वल हो, पुलकित मय हो ॥१॥

जीवन के इस लघु प्रवाह में
लहर न हो, संयम हो, बल हो।
हो उमङ्ग, उल्लास, हर्ष, पर हलचल में पड़कर
न विचल हो।
तेरे ही पद की सेवा के सागर में मिल
इसका लय हो ॥२॥

भीतर का आलोक जगा दे
बाहर के इस अन्धकार को
दम्भ द्वेष दब जाँय, सकूं मैं अपना
पावन विश्व-प्यार को।
मेरे अहङ्कार के क्षय से, मां तेरे
गौरव की जय हो ॥३॥

श्री "उन्मुख"

वीर श्रद्धानन्द की रुधिराञ्जलि मात्र —

दयानन्द के चरणों में

हथियाया उस जादूगर ने हृदय निकट कर पास.

सच्ची मां थी !

कहा, तर्क का उत्तर ले लो देन सकूं विश्वास,

यहं तो : 'हां' थी !

बरसों बीते, हुआ ही मन एकाएक उदास

सेठ कहां था ?

घर कटोरों में कुकर्म के छलक पड़ी फिर आस.

धीमी हां थी !

पर वकील क्या औ 'वात्सल्य' क्या हास हुआ न नाश

शक्ति कहां थी ?

गुरुकुल है जिस के गुरुचरणों में क्रिया शिक्षा वनवास

शरण जहां थी —

उसकी 'ना' श्रद्धा अंकुर बन करती रही विकास

जहां तहां थी —

([illegible])

गाओ! गाओ!!

गाओ! गाओ!

ए मम प्राण! आज फिर गाओ!

चिर मौन हृदयतंत्री की तारों पर पुनः बजाओ। गाओ०

अब तक रहा चुपके हो

तेरे मुख पर सूने कवि

फिर नये प्रेम का कोई मीठा सा राग सुनाओ। गाओ०

दुनियां के सुख दुख सारे

सब पाप पुण्य अंधियारे

तब मधुर प्रेम गायन की शुभ धारा में बह जावें

ए प्राण! आज कुछ ऐसा गान गाओ।

कब से मम जीवन प्याली

है खाली सूख गयी यह

कुछ बीत गये हैं! इसको

रतनारी ~~सी~~ मदिरा देवें।

हे प्राण! आज मादक आसव छलका दो। -

~~[illegible]~~ भर दो इसको लबों तक हे!

मैं एक सांस में पी लूं

खाली कर दूं तलछट तक

यह प्यास न बुझने वाली पीकर इसको बह जावे।

(पृथु लौटिये)

प्रेमी की मादिक मदिरा
छलित हो हो प्याली में
जग के पीने वालों को
ललचा देती है साकी!

यह टूटी बंसी मेरी, हे प्राण! पुनः इसमें भर जाओ!

दुःख पाप औ आफत से शंकित दुनिया के लोगो!

जग चिल्लाओं से आकुल भयत्रस्त भगते! सुन लो

पाती मैं मम प्राणों की
वह मुरली बजती है।

श्री वीरेन्द्र
उपस्नातक.

प्रकीर्ण

राष्ट्रीय भावना और भाषा

वर्तमान युग की संसार को जो देन है उसमें राष्ट्रीय भावना का बहुत ऊंचा स्थान है। राष्ट्रीयता का जन्म १८०० शताब्दि के बीच में हुआ था। इससे पूर्व हमें किसी भी देश में राष्ट्रिय भावना नहीं दिखाई देती थी। १८०० शताब्दि से पूर्व जितने संग्राम हुए हैं वे सब भिन्न राष्ट्रों में नहीं हुए परन्तु भिन्न धर्मों या भिन्न जातियों में हुए हैं। राष्ट्रों की उत्पत्ति तो राष्ट्रीय भावना के ही साथ हुई है।

मनुष्य जाति जब जंगली अवस्था में थी, तब उसके विचारों का केन्द्र जाति थी। जाति के लिये हित कर और अहित कर वस्तुओं को मनुष्य अच्छा और बुरा समझता था। विलफ्राई ने इसे Trible Self के नाम से पुकारा है। परन्तु अब मनुष्य का Trible Self नहीं रहा, अपितु National Self बन गया है। मनुष्य सदसद् का विचार जाति के हिताहित को मद्दे नजर नहीं रख सकता; परन्तु राष्ट्र के हिताहित को।

वेगोस ने जाति और राष्ट्र में भेद नहीं किया। उसने राष्ट्र का लक्षण करते हुए कहा है कि समान देश में रहने वाली जाति को ही राष्ट्र कहा है परन्तु न तो राजनीति शास्त्र में और नाहीं साधारण व-

व्यवहार में जाति और राष्ट्र को एक माना जाता है। प्रोफ़ेसर फौगिरी और कोलव ने भी राष्ट्र को केवल जाति माना है। जाति से उनका अभिप्राय उस जन समूह से है जिसकी एक भाषा है, एक साहित्य है, एक रीति रिवाज हैं, और धर्म भी एक है। इस मत से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय भावना को उत्पन्न करने के लिए जाति का एक होना आवश्यक है। परन्तु जाति का एक होना राष्ट्रीयता का एक मात्र कारण नहीं है। राष्ट्रीय भावना का सम्बन्ध साहित्यिक या सभ्यता सम्बन्धि एकता से नहीं, अपितु राजनैतिक दृष्टि से एकता से है। राजनैतिक एकता भिन्न भिन्न जातियों भिन्न भिन्न भाषा भाषियों और भिन्न धर्मावलम्बियों में भी हो सकती है।

राजनैतिक हित प्रायः उनके ही समान होते हैं जो एक जाति के हों। यह ठीक है कि— एक भाषा बोलते हों और एक देश में रहते हों। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने मनोभावों को दूसरे के प्रति अभिव्यक्त कर सकता है। भाषा ही एक ऐसा साधन है जो व्यक्तियों के सम्मुख एक आकृति को उपस्थित करता है। आज पहाड़ और समुद्र मनुष्यों को एक दूसरे से व्यवहार न कर सकने में इतने बाधक नहीं जितना कि भाषा का भेदभाव बाधक है। अमेरिका में एक व्यापारिक संघ का नाश इस लिए हुआ, उसके सदस्य एक दूसरे की भाषा को न समझ सकते थे।

भाषा का एक होना राष्ट्रीय एकता का बहुत बड़ा कारण है, परन्तु एक मात्र कारण नहीं। यदि भाषा का एक होना एक मात्र कारण होता तो आज स्विट्जरलैण्ड एक राष्ट्र न होता क्योंकि वहां फ्रैन्च, जर्मन, इटालियन ये तीन जातियां रहती हैं, और इन जातियों की भाषा भी भिन्न भिन्न है। इसी तरह रूस भी एक

राष्ट्र न होता, क्योंकि रूस में १२० भिन्न भिन्न छोटी जातियां रहती हैं। वहां भाषाएं भी अनेक हैं। ६२ भाषाओं में वहां प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। ५२ भाषाओं में वहां समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं। और इसके अतिरिक्त भारत में आज राष्ट्रीय भावना को जाग्रत होती हुई दिखाई देती है, क्योंकि पेशावर में कोई दुर्घटना होती उसके साथ सीमान्त प्रदेश को सहानुभूति होती है, उतनी ही बंगाली और मद्रासी भी सहानुभूति प्रगट करते हैं। अगर भाषा का एक होना ही राष्ट्रीयता का एक मात्र कारण होता तो आज भारत में जो हमें राष्ट्रीयता न दिखाई देती, क्योंकि भारत में इस वक्त २२० भाषाएं बोली जाती हैं। इस प्रकार आज इंग्लैण्ड और अमेरिका एक राष्ट्र होता, क्योंकि दोनों की एक भाषा है। इतिहास और राजनीतिशास्त्र हमें इस बात साक्षी दे रहे हैं कि भाषा का एक होना राष्ट्रीयता के लिये कोई आवश्यक कारण नहीं है। परन्तु हां, राष्ट्रिय एकता को उत्पन्न करने में सहायक अवश्य है।

भूल से सुधार

श्रीयुत 'मुनि' जी

पिता जी अपने पुत्र को देख कर कहने लगे - बेटा ! अब तो तुम अच्छे स्वस्थ मालूम होते हो।

पुत्र - जी हाँ ! अब शरीर में कुछ अधिक चेतनता और स्फूर्ति है और मैंने अब तपस्वी जीवन फिर प्रारम्भ करने की ठानी है। तपस्या से चेतनता और स्फूर्ति अधिक चमक उठेगी। मैं अधिक स्वस्थ हो जाऊँगा।

साधारण बुद्धि का ढलती उमर का पिता अपने लड़के की बातें सुन कर अचम्भे में रह गया और घबराया। मन में कहने लगा - इसकी अक्ल मारी गई है। न जाने कौन इसे ऐसी पट्टी पढ़ा देता है, मैं तो इसे किसी लंगोटी धारी के पास जाने नहीं देता। पिता को क्या मालूम था कि उसकी टेबल पर पड़ा 'The Indian Naturopath' का एक पुराना अंक उस लड़के के हाथ में लग गया था जो अलमारी साफ करने के बाद भूल से टेबल पर ही पड़ा रह गया था और जिसमें एक लेख था " Out door living at morning and evening." जिस लेख ने उसके जीवन के रुख को बदल दिया। बालक के मन में अपने स्वास्थ्य के मार्ग को ढूँढ निकालने की प्रबल इच्छा थी। उसे शर्म आती थी जब उसे उसके पुराने स्वास्थ्य की याद दिलाई जाती थी और पूछा जाता था कि अब तुम्हें क्या हो गया? वह छिपता था और अपने मित्रों के सामने आने से भी हिचकिचाता था। परन्तु चूँकि संसार में 'मनुष्य के प्रबल विचार ही उसके जीवन का रास्ता खोलते हैं' अतः पिता से वह पत्र भूल से छूट भी गया, लड़के को मिल भी गया और उसने एकान्त

में फुर्ती से पढ़ भी डाला। मिडल पास कर चुका था, चलता विद्यार्थी था फिर फुर्ती से पढ़ क्यों न डालता।

पिता ने लड़के की हालत देख कर प्रबल शस्त्र के प्रयोग करते ही उसी वह झट से उठा और उस लड़के की माता को बुला लाया। और पहले ही उसे पक्का कर दिया कि तेरा लड़का तो मर जायेगा उसने तो तपस्या शुरू कर दी है। माता घबराई हुई आई- हाय! मेरा लड़का मर गया, हाय मेरा लड़का मर गया। रोती चिल्लाती आकर लड़के को लिपट गई।

लड़के ने लपकती आती माता को देख कर अपने आप को सम्भाल लिया। उसे अपनी स्वस्थता का ध्यान आ गया कि उसने सर्वदा स्वस्थ रहना है अस्वस्थ नहीं। माता की विह्वलता में अपने आपको बहादेने में वह अस्वस्थ होना मानता था स्वस्थ होना नहीं। वह माता से बोला —

ऐ माँ! मैं तो जीता जागता यहाँ तेरे सामने तेरे हाथों में बैठा हूँ तू कैसे कहती है मैं मर गया। तुझे किसने बहका दिया। मैं तो पहले से अधिक स्वस्थ हूँ और तू देखेगी कि दिनों दिन अधिक स्वस्थ होता जाऊँगा।

माता ने पूछा – स्वस्थ स्वस्थ क्या कहता है मैं नहीं समझी।

बालक :- स्वस्थ का मतलब है 'अपने आपे में रहना'।

माँ – तो फिर इसमें क्या बात है 'अपने आपे में तो रहना ही चाहिये'।

बालक:- बात तो कुछ भी नहीं यही तो मैं कहता हूं। संसार में सब लोग अपने आपे में रहें तो अमन चैन न हो जाय। अपने आपे से बाहिर हुए फिरते हैं इसीसे रोना धोना मच रहा है।

पिता – संसार की बात फिर करना पहले घर की तो कर।

बालक – घर की तो कर ही रहा हूं, नहीं तो क्या बाहर की। आप अपने आपे से बाहिर हो गये तभी तो माँ को बहका लाये। और माँ भी जो अपने आपे में रहती तो इतनी रोती धोती क्यों!

माँ – बातें तो बड़ी अकलमन्दी की

करता है पर कभी कभी न जाने इसे क्या हो जाता है।

बालक — होता हवाता कुछ नहीं, जो होना था सो हो चुका. अब तो मैं स्वस्थ हूँ और हमेशा स्वस्थ रहूँगा।

पिता बीच में ही भला कैसे? हमेशा स्वस्थ तो कोई भी न रहा।

बालक :- रहा हो या न रहा हो मैं तो रहूँगा और तपस्या से रहूँगा।

पिता :- तपस्या क्या?

बालक :- ब्रह्मचर्य के नियमों का पूरी तरह से पालन करने का नाम तपस्या है। और मैं तो समझता हूं ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य दो भिन्न भाव नहीं हैं। ब्रह्म में रहने का नाम ब्रह्मचर्य है और अपने में रहने का नाम स्वास्थ्य है। All in one is Brahma and I am one in all. इसलिये ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य भिन्न भाव नहीं हैं।

लड़के की बुद्धिमत्ता और गम्भीरता को देखकर आज तो पिता मन ही मन फूल रहा था कि बड़ा होनहार लड़का है। परन्तु साथ ही साथ मनमें संकुचित भी था कि लोग मुझे क्या कहेंगे? लोग तो कहेंगे बस! तूने लड़का खो दिया, अरे वह तो ब्रह्म की बातें करता है। ब्रह्म में उड़ान लेता है भला अब तेरे काबू का कैसे रहा। पिता इसी दुविधा में पड़ा उलझन में उलझ रहा था कुछ समझ नहीं आती थी कि क्या करे। माता को तो बालक की बातें सुनते सुनते ऊँघ आगई।

बालक ने धीरे से कहा - चलो अच्छा हुआ यह तो स्वस्थ हुई इससे तो पीछा छूटा।

पिता ने कहा - बेटा! अब दूध पेड़ा, मक्खन, मलाई, खूब खाया करो स्वास्थ्य खूब बढ़ेगा।

बालक :- पिता जी! स्वस्थता तो अपने आप में रहने से मिलती है। पेड़ा, दूध, मक्खन, मलाई तो मैं नहीं हूं कि इनमें रहूँ और स्वस्थ हो जाऊँ।

पिता :- प्यार से भइया! हमारे लिये तो तही मक्खन, मलाई, दूध, पेड़ा सब कुछ है। तेरी बदौलत घर में सब कुछ है। जो तू न होगा तो फिर किस के लिये रहेगा कुछ भी न होगा।

बालक - यदि मैं ही सब कुछ हूं तो मैं जाता हूं। कह कर मैं गुरु जी के पास पहुंचा और [illegible] तपस्वी जीवन बिताने लगा। M.

रज़ाई में

श्री 'उन्मत्त' V.A.

कल मैं ज़रा दिन को अधिक सो लिया था, इसी लिये रात को वैसी गहरी नींद नहीं आई, जैसी कि इन पौष-माघ के दिनों में आती है। यों मुझे उस बात का ख़्याल पूरा था कि मैं कुछ उस वक्त सो रहा हूं तो मेरी दिनचर्या में बहुत दिनों तक के लिये एक ढील चलती रहेगी और ख़ासकर तब तो एक दम उठ कर पढ़ने की इच्छा होती थी जब मैं देखता था मेरे चारों ओर के साथी तन्मय होकर पढ़ रहे हैं मगर हर बार मैं दिल को सन्तोष दे लेता था कि आख़िर दिमाग़ को कुछ rest भी तो मिलना चाहिये और फिर सो जाता था।

और मुझे रात को पूरी नींद नहीं आई इसका एक और भी कारण है और वह यों है —

यह मेरा पुराना तजुर्बा है कि बिल्कुल नया २ बिस्तरा आदमी लेकर सोये तो शुरू २ में नींद ज़रा कठिनता से आती है। दुर्भाग्य से कल ही मैं एक ख़ूबसूरत, बेलबूटेदार रज़ाई अड्डा से लाया था इसलिये यही सही कसर भी पूरी होगई। जिस प्रकार नये वातावरण में एकदम पहुंच जाने पर आदमी को एक प्रकार का सङ्कोच अनुभव होता है, उसी प्रकार मालूम होता है, मुझे एक नई और चकाचौंध कर देने वाली रज़ाई में पड़ा देखकर नींद को मेरे पास आने में सङ्कोच होने लगा।

जो लोग सोते समय रात मुंह धोकर और शिवसङ्कल्प का जाप करके सोते हैं उन की तो मैं बात नहीं कहता; मगर जिन लोगों को रात को ख़ूब पेट भर कर सोने की आदत है और जो लोग गप्पें मारते या ताश खेलते २ सो जाते हैं उनके लिये मैं दावे से कह सकता हूं कि वे इन सर्दी के दिनों में भी गरम २ रज़ाई के अन्दर मुंह करते ही एक बार तो ज़रूर झनझना जाते होंगे। दिन भर जो अपमान से पहिले कभी एकदम दुत्कारा मालूम होता है तो केवल तभी जब रज़ाई के अन्दर मुंह चला जाता है जो लोग पग २ पर स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने में लगे रहते हैं उनको मैं सलाह दूंगा कि वे चाहें तो बेशक सारी रात भर मुंह बाहर कर के सोया करें, ~~मगर शुरू २ में~~

कम शुरू २ में ५-६ मिनट तक रज़ाई लेने के ऐन बाद मुंह यदि अन्दर भी रखा जाये तो कोई हर्ज नहीं है। मज़ा बड़ा आता है यदि भूलोक पर भी कोई स्वर्ग का द्वार है, तो यही रज़ाई है, इस के अन्दर घुसते ही आदमी राग-द्वेष काम-क्रोध, लोभ मोह, अहंकार सब से परे हो जाता है मेरा ख्याल है कि आदमी सबसे अधिक निडर और दिलेर अपने आप को कहीं अनुभव करता है तो केवल रज़ाई के अन्दर।

घर में रात के समय यदि किसी चोर का खटका हो जाये तो गा वद उसके से बचने को और निश्चिन्तता प्राप्त करने का सबसे अधिक अचूक उपाय यह है कि आदमी रज़ाई से अपना मुंह एक क्षण के लिये भी बाहर न निकाले। उस समय यदि मुंह बाहर किया जायेगा तो लगातार दिल में कुछ ऐसा अन्देशा बना रहेगा कि बस अभी किसी ने इधर या उधर से अचानक आकर अन्धेरे में गाल पर जोर से एक थप्पड़ रसीद कर दी। यदि किसी को याद करना हो तो ...

मान लीजिये यहां गुरुकुल में अचानक रात को बहुत सारे डाकू आ गये और चारों ओर से खतरे का घण्टा सुनाई देने लगा तो भाई आप के जाने से डाकू भाग तो जायेंगे नहीं; मज़े से रज़ाई के अन्दर मुंह कीजिये और अन्दर ही अन्दर खूब हंसिये कि यह बेवकूफ़ घण्टा बजाने वाला सारी रात भर घण्टा बजाकर आखिर खुद ही थक जायेगा। आप का इसमें क्या दोष। रज़ाई चीज़ ही ऐसी है कि इस के अन्दर जाकर आदमी दीन दुनियां से अलग, निरीह और किसी दूसरे संसार का आदमी बन जाता है। या दूसरे शब्दों में सच्चे सन्यासी की अवस्था को प्राप्त हो जाता है, जिस में शान्ति ही शान्ति है, किसी भी प्रकार की चिन्ता का समावेश नहीं।

भला सोचिये तो कि यदि परमेश्वर ने दुनियां में रज़ाई न बनाई होती तो उस गृहस्थी की क्या बुरी दशा होती जो थका मांदा आकर अभी सोया ही है कि उस के बच्चों ने नींद से उठकर चिल्लाना शुरू कर दिया है। वह बेचारा उस समय घर से रज़ाई के अन्दर मुंह करके इन्तज़ार करने लगता है कि बच्चे की मां उठकर अपने आप ही थोड़ी देर में बच्चे को सम्भाल लेती है। और उधर मां को भी रज़ाई से कम सहायता नहीं मिलती। यदि बच्चा बीच में पेशाब कर दे तो रज़ाई एक खासे स्याही चूस का काम देती है।

वेद में कहा है कि परमेश्वर अमृतोपस्तरण अर्थात् न मरने वाली या सदा रहने वाली रज़ाई है मतलब यह कि परमेश्वर में और उपस्तरण अर्थात् रज़ाई में यदि

कोई भेद है तो वह यही कि परमेश्वर तो अमृतोपस्तरण है और हमारी यह रुई की रज़ाई जरा कर जल्दी जाती है।

वेद में कहीं २ बात समझाने के लिये ही उपमा का प्रयोग किया गया है। जिसकी विवेचना इसलिये दूसरे वेद विषयक निबन्ध में साहित्य परिषद् के जल्से तक पर करेंगे मगर अभी यही उदाहरण ही ले लीजिये।

परमेश्वर का स्वरूप समझाने के लिये आखिर रज़ाई की उपमा ली क्यों गई है।

मुझ से आप पूछें तो मैं तो वेदों पर मुग्ध ही इन्हीं उपमाओं के कारण हूं जिस प्रकार रज़ाई के अन्दर आदमी घुसते ही रज़ाई को अपने ऊपर, नीचे पासों में और पैरों के नीचे लपेट कर बीच में गठरी सा बन कर सो जाता है, ठीक उसी प्रकार भक्त भी इस परमेश्वर रूपी रज़ाई के अन्दर सदा लिपटा सा रहता है और यह रज़ाई अमर है इसलिये ईश्वर को कहा है कि अमृतोपस्तरणमसि। अमृतापिधानमसि

और केवल व्यापकता के गुण के कारण ही परमेश्वर को रज़ाई कहा गया हो, यह बात नहीं परमेश्वर भी तरह ही रज़ाई शक्ति का भण्डार भी है।

— कभी आप को ऐसा अवसर पड़ा है कि बिना टिकट के आप गाड़ी में सफ़र कर रहे हों?

रात को ऐसा आदमी यदि ऊपर की बर्थ पर बिस्तर लगाकर लेटा हो और अचानक टिकट कलैक्टर आ जाये तो न तो उस समय रज़ाई में भागने का मौका मिलता है और न किसी दूसरे ही बहाने के सोचने का। ऐसे मौके पर सब से अच्छा तरीका यह है कि आप रज़ाई ऊपर ले लीजिये यह यह जादू आप को कुछ कष्ट बचा जायेगा।

सरदी से ठिठुरते हुए बच्चे को अपनी कोमल गोद में ले लेने के कारण रज़ाई जहां हमारी माता है, वहां निमोनिया और खांसी जैसे रोगों से बचाकर हमारा पालन करने के कारण यदि हम इसको अपना पिता भी कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। बन्धु और सखा तो यह है ही, मिलते समय इतनी ज़ोर से लिपटकर तो कोई पञ्जाबी और भी आपस में नहीं मिलते होंगे जितने कि दिन भर के बिछुड़ने के बाद आदमी अपने इस बन्धु और सखा से रात को लिपटकर मिलते हैं

इसलिये शास्त्रों में कहा है कि त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धु श्च सखा त्वमेव भगवन् हे स्वामिन्! तुम्हीं हमारी माता हो, तुम्हीं पिता हो। तुम्हीं हमारे बन्धु हो और तुम्हीं हमारे सखा और मित्र हो।

जब कोई घोड़ा दिन भर सवारी में जुता रहने के बाद शाम को किसी खुली मुलायम ज़मीन को देखता है तो बेतहाशा लोटनियां लगाने लगता है, ठीक यही दशा एक विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थी की भी हो जाती है, जब कि उसका दिमाग़ एक अनाद से दूसरे अनाद में जोता जाकर बिलकुल थक थका जाता है और रात को वह मुलायम गद्देदार रज़ाई में जा कर पड़ जाता है। उस समय उसका दिमाग़ रूपी घोड़ा किस प्रकार स्वच्छन्द होकर लोटनियां लगाता है, इस बात को समझाने के लिये यदि मैं अपना ही उदाहरण दे दूं तो अधिक अच्छा होगा।

अधिक दूर न जाकर इसी गुज़री रात को ही ले लीजिये मैंने तो यह आपको पहले ही कह दिया है कि कल दिन में मैं ज़रा अधिक सो लिया था। इसलिये इस तरह तो कोई सम्भावना थी ही नहीं कि मेरा दिमाग़ ज्यों ही इधर उधर ज़रा फुदकने लगे कि निद्रा भर से उसे अपने पाश में जकड़ ले। बस मेरे दिमाग़ ने खूब मौज मारी। पहले पहले गया सीधे काश्मीर के राजमहल में। खूब मौज़ मारी?

देखता क्या हूं कि एक खूब सजा हुआ महल है। नीचे मोटी सी मखमल का मुलायम फ़र्श है। चारों ओर दीवार के साथ गद्देदार आराम कुर्सियां लगी हैं, जिन पर तरह २ के बेल बूटेदार गद्दे बिछे हुए हैं। झाड़ और फ़ानूस की शान निराली ही थी। अगर और धूप की महक से अन्दर घुसते ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता था; जैसे किसी ने तपाक से स्वागत किया हो। दीवारों पर लटक रहे पर्दे इतने सुन्दर थे कि आवश्यकता न होने पर भी आदमी उन को लटका रहने ही रक्खे। और कुर्सियों के गद्दे ऐसे मुलायम और मोटे कि अगर कोई नया आदमी पहुंच जाये तो अकेला पन पाकर हरएक कुर्सी पर बारी २ से ज़रूर बैठे कि किस कुर्सी का गद्दा अधिक धंसता है। और यही हाल मेरा भी हुआ। आगे और पीछे चलने वाले अपने सब नौकरों को मैंने बाहर चले जाने का हुकुम दिया और स्वयं उस मयभवन का स्वच्छन्द उपभोग करने लगा। इतने में एक नौकर आकर झुककर सलाम किया और कहा "हुज़ूर! ५-६ या एक आदमी महाराज का दर्शन करना चाहते हैं और बाहर खड़े हैं; हुकुम हो तो ले आऊं।" पहले

पहले तो मैंने सोचा कि चन्दापार्टी होगी, जो मेरे नये महाराज होने की खबर पाकर रुपया वसूल करने आई है; मगर इतने में ही उस नौकर ने मेरे हाथ में एक चिट्ठी दी; जिसपर दो चार हिन्दी की लाइनें लिखी हुई थी। मैं पढ़ते ही एक दम उछल पड़ा। अहा! गुरुकुल के विद्यार्थियों की पार्टी आई है। एक बार तो ख़्याल आया कि आज सुदामा और कृष्ण के किस्से को भी मात कर दूं। वास्तव में कृष्ण ने जो सुदामा की बड़े दिल खोलकर आवभगत की थी उसके लिये कोई अत्यन्त आश्चर्य प्रगट करने या कृष्ण को कोई अनोखा रहस्यमय प्राणी मानने की बिलकुल ज़रूरत नहीं है। यह मानव-हृदय का स्वभाव ही है कि उसको त्याग में सुख अनुभव होता है। कृष्ण के द्वारिका भवन की सार्थकता ही इसी में थी कि उसमें सुदामा का प्रवेश हो। ज़रा सोचिये तो कि वही द्वारिका का प्रासाद द्वारिका में न होकर यदि किसी जंगल के एक ऐसे निर्जन कोने में होता कि जहां अनन्तकाल तक किसी आदमी के पहुंचने की सम्भावना ही न होती तो वह प्रासाद ऋद्धि और सिद्धियों से परिपूर्ण होकर भी कृष्ण महाराज को आराम न देकर काटने को ही दौड़ता।

सुदामा तो उन सभी मनुष्यों का उपलक्षण मात्र है जिनको द्वारिका के ~~प्रकार~~ प्रासाद के अन्दर पहुंचते और पहुंचकर जो चारों ओर के विशाल वैभव और ऐश्वर्य पर आश्चर्य प्रकट करके कृष्ण के प्रमोद को ही बढ़ाते हैं।

इतना सोचते २ मैं बिलकुल ही एक दूसरे विचारात्मक क्षेत्र में पहुंच गया। इतने में मुझे १२ का घण्टा सुनाई दिया। मेरा ध्यान बिखर गया। अब मुझे इसकी कल्पना भी नहीं थी कि अब बारह बजने लगे हैं।

गुरुकुल से आयी हुई वह पार्टी कितनी देर तक बाहर इन्तज़ार करती रही होगी, यह मैं कुछ कह नहीं सकता; मगर जब मेरा दिमाग इतनी दूर की छलांग मारकर अपने स्थान पर वापिस आया तो मैं रजाई के अन्दर ही अन्दर हंसा खूब। छोटी जमात में एक कहानी पढ़ी थी कि कोई शेखचिल्ली नाम का आदमी सदा हवाई किले ही बनाया करता था। तब मैं किसी आदमी की मनहीमन कल्पना करके उसका नाम शेखचिल्ली रख देता था और सोचा करता था कि कैसा बेवकूफ़ होगा वह शेखचिल्ली, जो एक गाय की सन्तति का विक्रय करके महल बनाने की सोचता है मगर अब समझ आती है कि हो सकता है वह शेखचिल्ली मेरे जैसा कोई पढ़ा लिखा शेखचिल्ली

ही हो।

मैं भी रजाई के अन्दर पड़ा पड़ा एक दम जो काश्मीर का महाराज बन गया, उसकी प्रक्रिया भी कुछ २ वैसी ही थी। अपनी नई, बेलबूटे दार रजाई के प्रभाव से पहले पहल मुझे मख़मली हरे २ गद्दे ख्याल आये; फिर गद्देदार कुर्सियां और फिर राज महल। अब रह गया था केवल उस राज महल का मालिक बनना; सो यह मेरे दिमाग के लिये कोई ऐसी कठिन बात नहीं थी ख़ास कर रजाई में घुसने के बाद, जब कि उस पर से बुद्धि और तर्क की लगाम बिलकुल ही हटा ली जाती है।

आप रेलवे स्टेशनों पर बहुत बार गये होंगे आपने देखा होगा कि किसी दूर खड़े हुए गाड़ी के डब्बे को यदि गाड़ी के साथ जोड़ना हो तो पोर्टर लोग क्या करते हैं। पहले सब के सब मिल कर उसको पीछे से धकेल देते हैं और फिर एक दम निश्चिन्त से हो जाते हैं। धक्का खाने के बाद वह डब्बा स्वयं पटरी २ चला जाता है और सीधा वहीं जा कर रुकता है, जहां अगला डब्बा उसके साथ जुड़ने के लिये प्रतीक्षा कर रहा होता है। बस ठीक यही दशा रजाई में घुसने के बाद दिमाग की भी होती है। आप एक बार इसको विचार रूपी पटरी पर धकेल कर दीजिये, फिर आपको बार बार बीच में धक्का देने की जरूरत नहीं है, यह स्वयं अपने अभीष्ट स्थान पर ही सीधा जाकर खड़ा होगा।

गाड़ी का डब्बा एक बार गति प्राप्त करके जिस प्रकार क्रमशः धीरे धीरे होने लगता है और फिर ब्रेक लगने पर एक दम ठहर जाता है उस प्रकार की कोई सम्भावना मेरे इस दिमाग रूपी डब्बे के साथ तो थी ही नहीं क्यों कि ऐसे मौके पर आम तौर से जो चीज़ ब्रेक का काम करती है, वह नींद मुझसे कोसों दूर थी। इसलिये जब रात को मैं रजाई में अन्दर घुसा तो मैंने सोचा कि दिमाग को जब उछल कूद मचानी ही है तो उसको किसी ऐसी दिशा में धक्का देना चाहिये जहां कुछ प्राप्ति भी हो। वाह! खूब ठोका !!!

सोचते २ एक बात ख्याल में आयी। क्यों न कल से जल्से के लिये कोई कविता ही पड़े पड़े रच डालूं। Good! Good !!

पहले पहले मैंने सोचा कि फूल पर कविता करूं पर थोड़ी देर में मैंने देखा कि फूल पर जो भाव आ रहे हैं, वह कुछ मौलिक नहीं हैं, पुराने घिसे हुए भाव हैं। तब मैंने ~~औरों~~ भौंरे (भ्रमर) को पकड़ा। मगर थोड़ी देर में वह भी उड़ता अपनी पंखड़ियां फड़फड़ा कर भाग निकला। मैंने सोचा कि

भ्रमर से कैसे छुटकारा पाया? डूबते २ खूब बचे !!!

यह अच्छी मुसीबत आयी। फूल भी नहीं भौंरा भी नहीं अब कविता करूं भी तो किस चीज़ पर करूं? बात यह है कि कविता भी गप्प की तरह अपने आप तो कभी अचानक शुरू हो जाया करती है मगर यदि कोई कविता करने के लिये ही यदि बैठ जाय तो जिस प्रकार इस तरह करने से गप्प नहीं शुरू होती कविता भी नहीं शुरू होती। Excellent !!! हम तो चिकने साफ पड़े हैं।

छोटी श्रेणियों में हमें लदो टांपने के लिये जुराबें मिला करती थीं तब लादी टांपने की अपेक्षा गेंद बल्ले की खेल हमारे लिये अधिक आवश्यक थी। इसी लिये उन जुराबों से तागा निकाल निकाल कर बड़ी जल्दी जल्दी गेन्दों का निर्माण हम किया करते थे। उन जुराबों की पड़ताल होने पर हम अधिष्ठाताओं से किस तरह तिकड़म बाज़ी करते थे; उसका वर्णन एक तो अप्रासंगिक होगा और फिर लम्बा भी होगा इसी लिये छोड़ देता हूं।

हां तो उन जुराबों से तागा किस तरह निकाला जाता था इस का करीब २ आप सबको अनुभव होगा। जिन को अनुभव नहीं उनको मैं बतला देता हूं। जुराब हाथ में लेने पर शुरू में उसका कोई छोर आपको हाथ नहीं नज़र आयेगा। आप कभी २ एक सिरे से उधेड़ते रहेंगे और कभी दूसरे से मगर जब एक बार सिरा आपके हाथ में आ गया तो फिर वह फटा फट अन्त तक निकलता आयेगा। बस यही हाल कविता का है। आप लाख सिर पटकिये आपके हाथ अन्त तक शिकार नहीं आयेगा। मगर जहां एक बार धुन जम गयी फिर चाहे आप दिन भर कविता करते चले जाइये।

परन्तु यदि सचमुच रजाई में पड़े २ मैं अपनी धुन जमाने और गुनगुनाने लगता तो अपने कमरे वालों के कदम जाग पड़ने पर मुझे कोई बहाना भी सोचना पड़ता। वसन्त कितना रंगीला था, इसी लिये मैंने सोचा कि कुछ और प्रोग्राम होना चाहिये। [illegible] का घण्टा बज चुका था, मगर मुझे नींद अब भी नहीं आयी थी। क्यों? और नींद आती भी होती तो क्या; कुछ न कुछ कल के सम्मेलन में सुनाना। यह मैं खूब अच्छी तरह जानता था। खुद एक दो बार मन्त्री बन कर देख चुका हूं कि इस प्रकार के अवसर के आने पर यदि कोई भाग न ले और असमर्थता ज़ाहिर करे तो बुरा लगता है। फिर यह तो जन्मोत्सव ही है, भाग न लेने पर मन्त्री महोदय लोग ख्वाह मुझे नाराज़ ही समझने लगें तो क्या फायदा। इसलिये तय किया कि कुछ न कुछ सोचूंगा ज़रूर ही चाहे कुछ हो जाय

मैं उठा और अपनी रज़ाई लपेटे बाहर बरामदे में आकर खड़ा हो गया। सोचा, यहां कुछ गुनगुना कर कोशिश करूंगा तो ज़रूर कोई न कोई कविता निकल आयेगी।

बाहिर आकर देखा-शरद ऋतु का चान्द पूरी तरह छिटक रहा था, बहन के प्यार सा मधुर और शीतल। छोटे २ तारे हृदय में एक उल्लास सा पैदा करते थे। माता के असंख्य चुम्बनों की तरह चारों ओर से मानो स्नेह की वर्षा हो रही थी, जिस का आसपास के फूल खिलखिला कर अनुमोदन कर रहे थे जिस प्रकार सावन भादों में वर्षा होते ही मेंढक अनुमोदन करने लगते हैं।

ऐसे समय तो किसी ठूंठ के भी शायद गला सा पैदा हो जाती और तिस पर बिल्कुल अकेलापन था। मैं धीरे धीरे गुनगुनाने लगा। हृदय की नसनस जागृत स्पन्दित होने लगी। उस स्पन्दन में, और उस बेहोशी में जिस विश्व प्रेम का साक्षात्कार हुआ उसमें यदि कविता न होती तो आश्चर्य ही होता। सम्मेलन को भूल कर, मन्त्री महोदय को और उनके आग्रह को भूल कर यहां तक कि कविता कर रहा हूं यह भी भूल कर मैं कविता करने लगा। मैं कितनी देर तक वहां खड़ा रहा, मैं कह नहीं सकता। इतने में कार्यालय की ओर से तीन बार आवाज़ आई टन, टन, टन मानो चित्र के बनने के साथ ही पीछे से किसी लड़के ने आकर सिर पर एकदम पानी छिड़क दिया हो। 'घैंटी बजाने वाले' को दण्ड मिलना चाहिए!

ओह तीन भी बज गये। यह सोचते ही मेरी कविता की धारा एकदम रुक गई - मगर अब कोई ऐसी पछताने की बात नहीं थी मैंने एकदम अन्दर आकर वह कविता उतार ली। वैसे दो तीन पद थे। फिर उन को स्वयं पढ़ा और स्वयं ही दाद भी दी। छन्द की या गति की शिथिलता भी दूर करी उसका बाह्य आकार भी संवारा और अन्त में एक बार फिर उन को संशोधित रूप में पढ़ कर मैंने बिस्तर लपेटना शुरू किया। सोचा, अब चार तो बजने वाले होंगे; कौन अपने कृताभ्यास से नया स्वागत करे; अब सीधा पंडित जी को नमस्ते कर के ही अच्छी तरह सोयेंगे यह सोच कर मैं पण्डित जी का इन्तज़ार करने लगा।

पतित पावन

श्री विश्वनाथ

I.

"आज इसी आम्रवन में हमारा रात्रि-विश्राम होगा। आगे जाने का समय अब नहीं है।" तथागत ने अपने शिष्यों को आदेश दिया।

"भगवान की जो आज्ञा" — शिष्यों ने विनम्र भाव से कहा।

एक अत्यन्त प्राचीन विशाल आम्रवृक्ष के नीचे की भूमि साफ कर दी गयी और वहाँ तथागत का आसन बिछा दिया गया। तथागत की सौम्यमूर्ति को घेर कर शिष्य भी वहीं बैठ गये।

मार्ग की विश्रान्ति का निवारण करने के लिये एक शिष्य समीपस्थ तालाब से शतदल-सम्पुट में जल लाकर बोला—

"ग्रहण कीजिये भगवन्!"

तथागत ने मुस्करा कर जल-ग्रहण कर लिया। उस समय अस्ताचल रवि की सुकुमार किरणें भगवान के ललाट-प्रदेश पर स्थित श्रम बिन्दुओं को झलका-चमका रही थीं। तथागत शान्त थे और निस्तब्ध थी उनकी शिष्य मण्डली, निशीथ की निस्तब्धता की तरह।

II.

जब अम्बपालिका को ज्ञात हुआ कि तथागत भगवान् उसके आम्रवन में विश्राम के लिये ठहरे हुये हैं तो वह भगवान् के दर्शनों के लिये पागल सी हुई २, किसी अनुचर को साथ लिये बिना ही वहाँ पहुँच गयी।

भगवान् के समीप पहुँच कर वह उनके चरणों पर लोट गयी और क्षमायाचना पूर्ण स्वर में बोली— "मुझे ज्ञात न था कि आज तथागत के पुनीत-चरण-युगल से मेरा उद्यान पवित्र हुआ है। भगवन्! मुझे क्षमा करें"

"देवि! तुम्हारे उद्यान ने हमने अति सुख प्राप्त किया। हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं।"

अम्बपालिका उठी और कर-युगल जोड़ कर उसने प्रार्थना की— "भगवन्! यदि प्रसन्न हैं, तो इस अकिंचन दासी के तुच्छ घर पर भोजन ग्रहण कर इसे कृतार्थ करें"।

"तथास्तु" — भगवान् ने गंभीर और स्थिर स्वर से कहा। अम्बपालिका का चेहरा खिल उठा और वह भगवान् को प्रणाम कर चली गयी।

iii.

तथागत की सवारी एक वेश्या के विशाल श्वेत प्रासाद के सामने ठहर गयी। जनसाधारण को अत्यन्त आश्चर्य हुआ पर भगवान् ने उधर ध्यान न दिया। अम्बपालिका ने दौड़ कर भगवान् के रथ से उतरने पर प्रासाद के विशाल द्वार पर उनका स्वागत किया और चरण-रज को मस्तक पर धारण कर बोली— "चलिये भगवन्! अन्दर सम्पूर्ण सामग्री प्रसज्जित है।"

अपनी शिष्य मण्डली के साथ तथागत ने अम्बपालिका के साथ-साथ अन्दर प्रवेश किया। मनुष्यों का आश्चर्य और भी बढ़ गया।

iv.

एक विशाल दालान के स्फटिक-पीठ पर तथागत बैठे थे और उनके दोनों पार्श्वों में पंक्तिबद्ध उनकी शिष्यमण्डली स्थित थी।

रजत और स्वर्ण पात्रों में सबको भोजन परोसा गया। अम्बपालिका स्वयं, भगवान् के थाल को सजाकर उनके सामने उपस्थित हुयी और थाल रख, हाथ जोड़, उसने विनती की।

— "भगवन्! इस तुच्छ भोजन के साथ ही इस अपवित्र-दासी को पवित्र कीजिये — अपनी शरण लीजिये।"

तथागत ने शान्त मुद्रा से कहा "तथास्तु!"

अम्बपालिका सिर झुकाए बोल उठी—

"बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।"

दालान गूंज उठा —

"बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।"

इस समय भी तथागत भगवान् के प्रशान्त चेहरे पर एक विशेष आभा थी और थी एक मुस्कराहट।

डाक्टर-साहब

श्री चन्द्रगुप्त

१.

डाक्टर देवीप्रसाद की कोठी के सामने एक मोटर आकर ठहरी, उसमें से एक युवा पुरुष जो कि पौशाक से किसी उच्च घराने का प्रतीत होता था उतरा, और उसने सीधे अन्दर जाकर पूछा—:

"डा० साहब कहां हैं?" चौकीदार ने बड़े अदब से जवाब दिया—:

"डा० साहब सो रहे हैं, कहिये क्या काम है?"

युवक—: "उन्हें एकदम बुला लाओ बहुत जरुरी काम है।"

चौकीदार ने दूसरी तरफ मुड़ कर नौकर को आवाज़ दी, और कहा:

"जा जल्दी, डा० साहब को बुला ला, बाहिर बाबू उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" और फिर उस युवक की ओर मुंह फेर कर बोला—: "आईये साहब, यहां बैठिये, डा० साहब अभी आते हैं।"

इतने में डा० साहब आ पहुंचे। उस नवागन्तुक बाबू ने एक दम सौ रुपये का नोट मेज़ पर रख दिया, और घबराया हुआ बोला—: "लीजिये इन्हें, और जल्द मेरे साथ चलिये। मेरी माँ सख्त बीमार है। इस समय हालत बहुत ख़राब है। आपको साथ ले जाने के लिये ही स्वयं मुझे मोटर पर आना पड़ा है।"

डाक्टर देवीप्रसाद स्वभाव से ही लक्ष्मी के अनन्य भक्त थे। उनके यहां यद्यपि पैसे की कमी न थी और नाहिं योग्यता की कमी, पर तो भी किसी ग़रीब की परछांई भी उनके इस्पताल में पड़ती दिखाई न देती थी। ग़रीबों के नाम से उन्हें चिढ़ थी और दान से दूर भागते थे। वे उन नोटों की तरफ नज़र मार कर बोले हमारा काम तो पहिले बीमार और बीमारी से पड़ता है, और पीछे धनी और धन से। पर उस आगन्तुक ने एक न सुनी, और नोट उनके हाथ में पकड़ा ही दिया।

डाक्टर साहब बोले—:

"चलिये मैं अभी कपड़े पहन कर आता हूं।" पर मन ही मन सोचने लगे कि आज तो खूब हाथ लगेगा।

डाक्टर साहब कपड़े पहन कर अपने कम्पाउण्डर को साथ ले उसी की मोटर पर जा चढ़े। मोटर चल पड़ी।

२.

आध घन्टे बाद मोटर शहर के बाहिर झोंपड़ियों से घिरे हुए एक हिस्से में आ पहुंची। सर्वत्र अन्धकार का पूर्ण राज्य था। कई झोंपड़ों में से रुक रुक कर दर्द भरी आवाज आ रहीं थी। मोटर के लैम्पों के प्रकाश में झोंपड़े दरिद्रता की साक्षात् मूर्ति ~~की~~ ~~सदृश~~ मालूम पड़ते थे। थोड़ी देर बाद एक झोंपड़े के सामने मोटर रुक गई। डाक्टर साहब बड़े आश्चर्य में थे कि क्या होने वाला है? इतना धनी मनुष्य और फिर उसका यहां क्या काम? अस्तु, वे भी उसके पीछे पीछे झोंपड़े में घुसे। झोंपड़े में जिधर देखो उधर अन्धकार दिखाई देता था।

डाक्टर साहब बोले—"कहिये कहां हैं आपकी माँ? क्या आप........।" अभी डाक्टर साहब पूरा भी न बोल पाये थे कि वह कहकहा मार कर हंस उठा।

डाक्टर साहब डरे, कि कहीं यह डाकू तो नहीं? मुझे यहां यह फंसा कर तो नहीं ले आया? वे बाहर सड़क की तरफ लपके पर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो उनके पाँव जमीन से चिपक गये हैं। वे थर थर काँपने लगे।

इतने ही में झोंपड़ी एक दिव्य प्रकाश से चमक उठी। डाक्टर साहब ने देखा कि उसी पूर्व परिचित बाबू के चेहरे से ये किरणें फूट रही हैं।

वह दिव्य पुरुष बोला—: "डाक्टर साहब! जानते हैं कि आपको मैं यहां क्यों लाया हूं?"

डाक्टर साहब मंत्र-मुग्ध से होकर बोले—"नहीं"।

उसी गम्भीर आवाज में दिव्य पुरुष बोला—: "आपको यहां लाने का कारण केवल यही है कि मैं आपको बताना चाहता हूं कि आपका कार्य्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है। केवल पैसे के बल पर जीवन तक को कुर्बान कर देने वाले रईस लोग ही आपके कार्य्य क्षेत्र में नहीं आते, यह झोंपड़ी उन सब गरीब लोगों की प्रतिनिधि स्वरूप है जो एक बार भी आप तक नहीं पहुंच सकते। डाक्टर साहब! आपका उद्देश्य महान् होना चाहिये।" यह कह कर वह दिव्य पुरुष चुप हो गया।

डाक्टर साहब ने ज्यों ही सिर ऊपर उठाया तो अन्धकार ही अन्धकार अपने चारों तरफ़ पाया। वे चौंक उठे, और उनकी आँखें खुल गई।

इस घटना से डाक्टर साहब के जीवन और स्वभाव में एक नया ही परिवर्तन आ गया। वे अब पुराने देवीप्रसाद न रहे।

Hidden
Gupta

मा गृधः

वेद की आज्ञा है "मा गृधः" लोभ मत कर. हे मनुष्य जब तेरा दिल किसी वस्तु पर ललचाए और उसे चुराने को करे तो वेद की इस स्पष्ट आज्ञा को स्मरण कर और चोरी से बच. यह आज्ञा किसी साधारण मनुष्य की नहीं है.

यह आज्ञा ईश्वर की है.

बख्शीश की नहीं, हुक्म की है. वह ईश्वर जो राजाओं का राजा है जिसकी अनन्त शक्ति से सारा ब्रह्माण्ड चल रहा है जिससे आग से आग जलती है, जल बहता है, वायु चलती है और पृथ्वी दृढ़ है. कौन सा स्थान जहां प्रभु नहीं है. वह हर वस्तु में हर व्यक्ति में व्याप्त है. इस सत्य का अभ्यास करने से

लोभ पर विजय

सुगमता से हो जाती है. और वह हज़ारों आंखों वाला, चर अचर, जड़-चेतन, इस सब शक्तिमान जगत् में ओतप्रोत है. जब किसी की चीज़ उठाने को दिल करे तो यों सोच -

१, इस समय भगवान् यहां है. उसे अदालत या सिपाही पुलिस की कभी ज़रूरत नहीं पड़ती. छुपके से भी तो पाप करो. वह हर जगह तो आगे ही मौजूद है.

२, जिसकी चीज़ है उसमें भी भगवान् हैं. उसके इस चीज़ की चोरी पर दुःख का वह भी भागी है उसे दुःख देने के कारण प्रभु हमें दण्ड देगा. आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों. उससे बचना मुश्किल है जो हर जगह है जो न्यायकारी जो शासन करता जानता है और अपराधी को दण्ड देता है और रुलाता है. भोले भाले किस भ्रम में हो. क्यों आगे के लिये अपने मार्ग में कांटे बोता है. दण्ड दिलाये छोड़ेगा नहीं. फिर पछताएगा, अभी तक ना मत ललचा.

३. जिस चीज़ को उठाता है उस में भी है. तू क्या समझता है. जड़

में बोलता कहाँ? अरे वह बड़ा रचयिता जड़ का भी निर्माण कर लेता है और बंद आँखों से भी देख लेता है. उसकी बंद आँखों से मत जाइयो उसे सब कुछ दीखता है, वह वस्तु ~~वस्तु~~ जिसे तू छुपाता है, तेरी चोरी की साक्षी है और भगवान् के दरबार में तेरे विरुद्ध साक्षी देगी. यह विश्वास जान और पाप से बच.

४. जिस दिल में चोरी का भाव पैदा हुआ है उस भाव का साक्षी तेरे अन्दर बैठा है उसने सब तत्काल नोट कर लिया है. और तेरे हृदय पट पर ही लिख लिया है. इसी से हृदय मलीन हो रहा है. अरे वह दूर नहीं वह तो पास से पास है उसी के इशारे से तेरा हृदय काम कर रहा है. अरे जो तेरे हृदय की हरकत करा के चला रहा है क्या वह उसमें उठने वाले भावों को नहीं जानता. क्या वह तेरी हर हरकत को नहीं देखता और क्या वह ~~इस कर~~ यह सब कुछ तुझ में ही छोड़ देगा हरगिज़ नहीं.

५ जिस वपु से उसने लगा है, उसकी हरेक अंगुली में, हर जोड़ में, हर रोम में वह राम रम रहा है और तेरी करतूत देख रहा है. यह सोच और पाप से बच.

६. जिस स्थान में उसने लगाई जिस कमरे में उसने लगा है. उस कमरे की दीवारें, उस कमरे की हर एक वस्तु तेरी साक्षी होगी और तेरे विरुद्ध गवाही देगी. लहरों में जो साक्षी बन के बैठा है. वह सह-साक्षी तुझे यहां देख रहा उस का स्मरण कर और पाप से बच.

७ - जिस रस्ते से तू उसे उठा कर ले चला है उस रस्ते में भी वह बसता है. वहाँ ही उसका स्मरण कर और उसकी वस्तु को वहाँ ही वापिस छोड़ आ नहीं तो तेरे तुझे छोड़ेगा नहीं.

८ - जहाँ जाकर पाप हो रहे उस देश में, उस अलकाति में, उस भूमि में, अरे भोले! वह सहसाक्षी आगे ही पहुँचा हुआ है. वह देश, वह अलकाती, वह भूमि सब तेरे विरुद्ध गवाह हैं जो तेरी आत्मा का हनन करेंगे. यदि पाप से बचना चा-हता है तो यहां से निकल जा फिर कहीं पाप आप का ज्यादा हिम्मत कर अपने अपराध को

मान कर जिसकी चीज उठाई है, उसे दे आ, उससे क्षमा-मांग, प्रायश्चित्त कर, और भगवान से शक्ति मांग कर आगे के लिये प्रतिज्ञा कर कि हे घट २ में व्यापक प्रभो! अब मैं सत्य का, अस्तेय का, व्रत लेता हूं। तू व्रतपति है। तू मेरी सहायता कर मैं पाप से झूठ से बचूं और सत्य को प्रकाश को प्राप्त होऊं।

मेरे अन्दर निश्चित हो, मुझे चोरी करने की जरूरत नहीं है। तूने शक्ति दी है। इस शक्ति को बढ़ाऊं। अपने बाहुबल से कमाऊंगा नेक कमाई करूंगा। सत्य का व्यवहार करूंगा। फिर सब रतन मेरे पास आवेंगे और मैं आनन्द से [illegible] कर जीवन व्यतीत करूंगा।

प्रो० ल[illegible] लक्ष्मण जी
[illegible] A.

: उस प्यारी कुलमाता को है मेरा बारम्बार प्रणाम :

हिन्दुविश्वविद्यालय में -
गुरुकुल

श्रीयुत वेदव्रत १३.

महामना मालवीय जी की अनुपम कृति हिन्दु विश्वविद्यालय का नाम सुना तो बहुत था किन्तु इससे पूर्व कभी देखने का अवसर न प्राप्त हुआ था। वादविवाद के लिये पटना जाते हुए हमारा दल बनारस उतरा अवश्य था किन्तु समयाभाव के कारण हिन्दु विश्वविद्यालय को तो प्रोग्राम में स्थान ही न दिया गया था यद्यपि उसे देखने की मेरे मन में प्रबल आन्तरिक अभिलाषा विद्यमान थी। आखिर, भविष्य के पर्दे को फाड़ कर इस बात को कौन देख और समझ सकता था कि मुझे फिर भी बनारस आना है - और केवल हिन्दु विश्वविद्यालय देखने के लिये। यह तो सोलह दिन बाद ही भाग्य ने बतलाया कि मुझ जैसे नाचीज़ जीव को भी उस विश्वविद्यालय के अन्दर एक महत्वपूर्ण कार्य का सम्पादन करना था।

बनारस प्रतियोगिता के लिये तय्यारी करने की कुछ भी इच्छा न होते हुए जिन बातों ने मुझे घरेलू प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये प्रेरित किया उनमें विख्यात हिन्दु विश्वविद्यालय को देखने की उत्कट अभिलाषा भी एक थी। दिल में यही विचार था कि कभी २ तो अन्धे के हाथ भी बटेर लग जाती है और अन्धेरे में छोड़ा तीर भी कारगर हो जाता है। भविष्य का अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। बड़ो बड़ों की अभिलाषायें और प्रोग्राम बिना पूर्ण हुए ही उनके साथ समाप्त हो गये। फिर हम कौन खेत की मूली हैं। इसी लिये अपनी घरेलू प्रतियोगिता में द्वितीय आने पर भी मन को इस बात का सन्तोष और हर्ष था कि 'न सही पहले - दूसरे ही सही,' किन्तु परमकारुणिक प्रभु की कृपा से उस विश्वविद्यालय को देखने का अवसर तो मिला जिसे लोग एशिया भर में अद्वितीय शिक्षा केन्द्र कहते हैं और जिसकी अन्तर्राष्ट्रिय महत्ता के स्वप्न प्रातः स्मरणीय मालवीय जी लेते हैं, यद्यपि उनके पूरा होने की अभी कोई आशा नहीं।

बनारस जाने वाले हम कुल मिला कर चार थे। ब्र. नित्यानन्द जी तो यहीं से प्रथम हो कर गये थे। ब्र. सूर्यकान्त जी अतिरिक्त वक्ता के रूप में हमारे साथ थे। प्रो. नन्दलाल जी खन्ना अध्यक्ष के रूप में थे। प्रोफेसर जी खूब आनन्दी जीव हैं और सब हमारे साथ बिलकुल एक होकर रहते थे। वादविवाद से पूर्व आराम मिल

सके इसलिये हम १६ को ही सीधे हिन्दु विश्वविद्यालय पहुंच गये यद्यपि वादविवाद १८ को था। थोड़ी दूरी से ही विशाल भवनों और विस्तृत प्रदेश ने विश्व विद्यालय की सूचना दे दी थी। वहां कोई हमारे गुरुकुल के जलसे जैसी रौनक व भीड़ न थी। स्थान भी खास सुन्दर नहीं था। सड़कों की पर्याप्त दुरवस्था थी और बड़े २ भवनों से उनका कोई मेल न था। ऐसी ही एक सड़क पर बिड़ला-विद्यार्थी-निवास के एक कोने पर हमारी गाड़ी रुकी। प्रोफेसर जी के साथ होने से हमें कुछ अधिक चिन्ता न करनी पड़ती थी। हमने आश्रम के एक विद्यार्थी से 'हिन्दी साहित्य सभा' के मन्त्री श्री लक्ष्मी नारायण जी सुधांशु के लिये पूछा। उसने बड़ा अजीब उत्तर दिया। 'साहिब! यह तो उनको पता होगा जो इन बातों में interested हैं। हमें तो पता नहीं।' ऐसी बात हमारे गुरुकुल में नहीं हो सकती। मेरे स्पष्ट है इसका कारण सम्भवतः उस विश्व विद्यालय की विशालता और वहां का जीवन ही है। उसके बाद हमने जिस महानुभाव से पता किया वे भी उस विषय में कुछ न जानते थे। किन्तु उनकी मृदुता उससे स्पष्ट है कि उन्हों ने साथ होकर और इधर उधर से पूछ कर हमें ठीक ठिकाने पहुंचा दिया। निःसन्देह सुधांशु जी बड़े भले और सज्जन व्यक्ति थे। उन्हों ने

हमारा यथाशक्ति उचित प्रबन्ध कर दिया। उनके सहायक श्री राम बिहारी शुक्ल बड़े गप्पी और खुशमिजाज़ तथा चुस्त आदमी थे। हमारे यहां वे काफ़ी समय बैठे गप्प लड़ाया करते थे और भी कुछ एक विद्यार्थियों का हमसे परिचय हो गया था और वे बड़े मान और नम्रता से तथा सभ्यता से पेश आते थे। १६ तारीख को तो हम भोजनादि से निवृत्त होकर गप्प शप्प लड़ाते हुए सो गये। अगले दिन से वहां का प्रोग्राम था। हम सब नित्य कर्मों से निवृत्त होकर, भोजनादि करके घूमते हुए उस स्थान की ओर चल दिये जहां नवस्नातकों का समावर्तन संस्कार और उपाधिवितरण किया जाना था। वह स्थान अच्छा सजा हुआ था। गेन्दे के फूलों की सजावट में भरमार थी। एक गान्धी जी का चित्र और तिरंगा झण्डा स्टेज के पीछे लगा हुआ था। तिरंगा झण्डा प्रायः बड़ी २ इमारतों पर लगा हुआ था। उस स्थान पर स्वयं सेवकों का बड़ा कड़ा प्रबन्ध था जो कि वहीं के विद्यार्थी थे। हमें सुधांशु जी आदि ने कहा था कि आपको अन्दर स्थान मिल जायेगा प्रवेश पत्र आदि की आवश्यकता नहीं, अतः हम निश्चिन्त थे। किन्तु वहां द्वार पर ही एक स्वयंसेवक ने कह दिया कि 'सब कुछ ठीक है पर अफ़सोस है कि मैं आपको अन्दर बैठने

की आज्ञा नहीं दे सकता, क्योंकि आपके पास कोई प्रवेश पत्र आदि नहीं है। और अब उनको प्राप्त भी नहीं किया जा सकता।" प्रो. खन्ना जी ने थोड़ी मगज़ पच्ची करके वहाँ के प्रबन्धकों से मिलने का यत्न किया। परिणामतः उन को कुछ आगे और हमको कुछ पीछे स्थान मिल गया। लाउड स्पीकर आदि का प्रबन्ध था। राष्ट्रिय गान आदि के अनन्तर कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। स्नातकों की संख्या यहाँ की अपेक्षा कहीं अधिक थी। एक आध साल से वहाँ विद्यार्थियों की संख्या बहुत बढ़ गई है क्योंकि दक्षिण के कालेजों से निकाले गये लगभग हज़ार डेढ़ हज़ार विद्यार्थियों को महात्मा जी के आदेशानुसार मालवीय जी को अपने विश्वविद्यालय में आश्रय देना पड़ा है। नव स्नातकों के लम्बे चौड़े जलूस के पीछे विश्वविद्यालय के प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष थे, आचार्य ध्रुव, मालवीय जी, बनारस के महाराजा तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। नव स्नातकों के उतने बड़े जलूस में कम से कम मुझे तो एक व्यक्ति ऐसा नज़र आया जिसे चेहरे से प्रतिभा सम्पन्न कहा जा सकता था न शकल थी, न शरीर और न वेश भूषा। सम्भवतः उसका कारण उधर का जलवायु, प्रथा, परम्परायें, रहन सहन, खान पान और वेश भूषा हैं। यहाँ पर अपने गुरुकुल के समावर्तन संस्कार और हिन्दु विश्वविद्यालय के समावर्तन संस्कार के विषय में तुलनात्मक दृष्टि से दो चार शब्द लिख देना अनुचित न होगा। सचमुच यहाँ का यह संस्कार जो संस्कार का नाम भी नहीं है ऐनक आदि की दृष्टि से तो कोई मुकाबिला ही नहीं है। यहाँ तो सम्मिलित भिन्न तरह से पञ्जाब तथा अन्य प्रान्तों की आर्य जनता का बड़ा भाग आ जाता है गुरुकुल का वार्षिकोत्सव आर्य समाजियों का अच्छा खासा मेला होता है। किन्तु वहाँ तो विश्वविद्यालय के उपाध्यायों और छात्रों को छोड़ कर बाहर से तो क्या बनारस शहर से आने वाले सज्जन भी थोड़े ही होते हैं। स्नातक यदि यहाँ १४ होते हैं तो वहाँ २०० होते हैं किन्तु जो भाव उस अवसर पर हमारे ब्रह्मचारियों तथा स्नातकों में उदित होते हैं उनका वहाँ कोई स्थान नहीं। मालवीय जी के भाषण के समय यदि कुछ भाव उठते हैं तो न के बराबर। हमारे संस्कार की गम्भीरता और पवित्रता वहाँ रह नहीं सकती। यह भी एक business सा होता है। संस्कार में थोड़ा सा संस्कृत को अवश्य स्थान दिया गया है जो उनमें वहाँ की विशेषता प्रतीत हुई। यहाँ की तरह बड़े २ आदमियों के सन्देश तथा महात्माओं के उपदेश वहाँ उनको नहीं मिलते हमारे चोले वहाँ के चोले हैं कहाँ

सुन्दर हैं। इन सब बातों को देखकर अनुभव होता है कि कुलपति स्वामी श्रद्धानन्द जी ने यहां प्रत्येक प्रथा और वस्तु का प्रारम्भ तथा प्रचार बहुत सोच कर किया हो साद्गी के साथ साथ सौन्दर्य के लिये भी उनके दिल में स्थान था। उस संस्कार के अवसर पर भी मुझे यह अनुभव हुआ कि यद्यपि हमारा गुरु-शिष्य सम्बन्ध किन्हीं दृष्टियों से पर्याप्त त्रुटिपूर्ण है तो भी जिस मान और सम्मान से हम अपने अधिकारियों और गुरुओं से पेश आते हैं सो बात वहां नहीं है यद्यपि अन्य सरकारी विश्व विद्यालयों की अपेक्षा वहां उस ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। एक मालवीय जी को छोड़ कर वहां किसी और की धाक नहीं है और न विद्या क्षेत्र पर कुछ चलती है। स्नातक होने वालों की संख्या अधिक होने से जहां मालवीय जी उपाधि वितरित करते हुए थक गये थे वहां हमें भी उनका भाषण सुनने की उत्कण्ठा थी। अलवर नरेश का भाषण तो पाठकों ने समाचार पत्रों में पढ़ लिया होगा। आचार्य ध्रुव के उपदेश की कल्पना आचार्य देवशर्मा जी के उपदेश से की जा सकती है। महात्मा मालवीय जी का भाषण आ. रामदेव जी के भाषण की तर्ज पर था यद्यपि उसमें कुछ वास्तविकता की झलक अधिक थी जिस ओर मालवीय जी का ध्यान अब यूरोप यात्रा के बाद बड़े वेग से आकृष्ट हो रहा है। अपने विश्व विद्यालय के उद्देश्य और उसको व्यावहारिक रूप का अच्छा चित्रण किया गया था। मालवीय जी के भाषण से तथा कुछ महात्माओं से अलग बातचीत करने से इतना स्पष्ट प्रतीत होता था कि हिन्दू विश्व विद्यालय हमारी अपेक्षा हिन्दी भाषा की उन्नति की ओर कहीं अधिक ध्यान दे रहा है। कितने वर्षों से हमारी शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा है किन्तु हमने उसे शिक्षा माध्यम बनाने की ओर न के बराबर ध्यान दिया है जब कि हिन्दू विश्व विद्यालय एक विशेष कार्यक्रम को लेकर हिन्दी के अन्दर उस योग्यता को उत्पन्न कर रहा है जिससे वह उनको शिक्षा माध्यम बन सके। कार्य प्रारम्भ हो चुका है और उसकी अवधि निश्चित है जब तक उसे पूरा हो जाना है। विश्व विद्यालय की शिक्षा के योग्य साहित्य को हिन्दी में तय्यार किया जा रहा है। जहां प्रतिवर्ष दीक्षान्त अभिभाषण अंग्रेजी में ही होता था वहां इस वर्ष हागोर के न आ सकने से स्वयं मालवीय जी ने जो अभिभाषण दिया वह भी हिन्दी में ही था। एक बात जो उन्होंने मार्के की कही थी जिस ओर मैं पाठकों का ध्यान प्रसंग वश आकर्षित करना चाहता हूं। प्रतीत होता था कि उनका आत्मा बोल रहा है। धन की और उपाधियों की घुमाव फिराव की बातों के बाद नवस्नातकों की ओर हाथ उठा कर मालवीय जी ने कहा था कि "मैंने भी अपने जीवन में एक दो उपाधियां प्राप्त की हैं और जानता हूं कि उस अवसर पर कितना अनिर्वचनीय हर्ष और उल्लास होता है। आज उसी हर्ष

और उल्लास का अनुभव ये स्नातक कर रहे होंगे, जिनको मैंने अभी नाना उपाधियों से अलंकृत किया है। इस दीक्षान्त के समय मेरे मन में एक विषाद की मलिन रेखा रह रह कर उठती है। वह यह कि 'आखिर इन बी. ए., एम. ए. और बी. एस सी. तथा एम. एस सी. को बना कर मैंने क्या किया? इनको जीवन में क्या सहायता की; जहां इतने नौजवान मारे २ फिरते हैं वहां इतनों की और वृद्धि हो गई।" आवाज मालवीय जी के अन्दर से उठ रही थी। मेरे सम्मुख में एकदम सन्नाटा था। बिना किसी प्रकार की लाग लपेट के मालवीय जी ने स्पष्ट और खरी बात कही थी। उनकी बदलती हुई विचारधारा के वेग को उनकी बुढ़ापे की विदेश यात्रा ने बहुत अधिक तेज कर दिया है। अब वे 'Pure science की जगह Applied science' के स्वप्न ले रहे हैं और इसी लिये एक 'अन्तर्विश्व विद्यालय विचार समिति' का आयोजन कर रहे हैं। लेकिन इन बातों की ओर हमारा ध्यान जाने में न जाने अभी कितनी देर है। संसार की वस्तुस्थिति की ओर से आंख बन्द करके पुराने आदर्शों की भित्ति पर कब तक खड़ा रहा जा सकता है। अब तो संसार में धर्म, अधर्म की, सफलता असफलता की और जीवन की परख ही बदलती चली जा रही है। आचार्य को दिनरात यही ध्यान होना चाहिये कि मैं इतने जीवनों के लिये संसार के सामने और ईश्वर के सामने जिम्मेवार हूं। अतः शिष्यों का संसार में जो स्थान है उसके लिये वही उत्तरदाता है। जीवन के चाहे वह संख्या में एक ही का हो और तुच्छ से तुच्छ प्राणी का हो - परमेश्वर और प्रकृति की अमूल्य निधि है। गुरुकुल जैसी संस्था को बढ़ने का कितना अवसर प्राप्त है। यदि फिर भी उपेक्षा व कट्टरता से काम लिया जाये तो निःसन्देह भाग्य को कोसते हुए कवि का समर्थन करना पड़ेगा कि "Alas for the boons which slip unto unworthy hands."। इतने अधिक कार्यों और चिन्ताओं के होते हुए भी मालवीय जी अपने विश्व विद्यालय में एक महान परिवर्तन की कल्पना कर रहे हैं। उनको करोड़ों रुपया एकत्र करना है। कट्टरता और आदर्शवाद की दृष्टि से वे भी कम नहीं हैं। अन्य प्रगतिशील संस्थाओं को देख कर स्वनामधन्य कुलपिता की याद चित्त को विक्षिप्त कर देती है। स्वामी जी अपने विचारों में मौलिक थे। मौलिकता के लिये आवश्यकतानुसार परिवर्तनशीलता आवश्यक है। प्रकार के ज़ोर पर चलना मौलिकता नहीं है। गुरुकुल बहुत कुछ पिछले धक्के के जोर पर ही चल रहा है। अस्तु, इस अप्रासंगिक चर्चा को अभी तक लम्बा न करके मुझे यहीं छोड़ना चाहिये। जब २ यह विषय, मेरे मन में उठता है तब २ मुझे अपनी विचारधारा को काबू करना कठिन हो जाता है। अपने गुरुकुल से कुछ ऐसा ही 'मोह' है।

अपने जीवन की किसी सफल घड़ी
में यदि मैं किन्हीं को याद करूंगा तो
उन में इस कुलमाता का नाम सर्वोपरि
होगा। १२ तारीख को प्रातः ८½
बजे हमारी वादविवाद प्रतियोगिता
थी। उस दिन थोड़ी सी हमें तैयारी की
चिन्ता हुई। प्रतियोगी लोग भी आ-
गये थे और पता लग गया था कि
इस वर्ष की प्रतियोगिता अभूतपूर्व
है क्योंकि ३०, ३२ वक्ता भाग लेने
वाले थे। समय बहुत थोड़ा २ मि-
लना था, निर्णायक भी उच्चकोटि
के थे। श्रोता लोग तो सब पढ़े लिखे
विद्यार्थी, उपाध्याय और सभ्य ना-
गरिक थे। यह भी पता लग गया
था कि ज़रा सी भूल होने पर विद्या-
र्थी लोग वक्ता का नाक में दम कर देते हैं।
मुझे अपने मैटर की ही कुछ चिन्ता
थी क्योंकि समय थोड़ा था. नित्या-
नन्द जी को गले की विशेष चिंता थी।
साथ में दो खाली व्यक्तियों - प्रोफेसर
जी और सूर्यकान्त जी के होने से
हमें अपनी चिन्ता को छोड़कर गपशप
भी लगानी पड़ती थी। पर अच्छा हुआ
८½ बजे हम मण्डप में पहुंच गये।
मालवीय जी की गीता और भागवत
की कथा चल रही थी। सर्वसंघ को
समय के अन्दर कौन बांध सकता था,
सब परेशान थे। ९¼ बजे उनकी
कथा के अनन्तर हमारा कार्यक्रम प्रा-
रम्भ हुआ। सभापति के पद पर युक्त
प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा के सभा
पति सर सीताराम जी थे उनके दायें
समालोचक शिरोमणि श्याम बिहारी
मिश्र और बायें उपन्यास सम्राट श्री
प्रेमचन्द जी विराज रहे थे। पीछे को
ओर प्रतियोगी भाई कुछ पृथक बैठे थे।
जनता काफी तादाद में थी। इतनी भी
सभा में बोलने का सम्भवतः हम दोनों
का प्रथम ही अवसर था। भाई नित्या-
नन्द जी का ६वां नम्बर था और मेरा
१२वां। नित्यानन्द जी शायद अपना
नाम थोड़ा और पीछे चाहते थे किन्तु
मैं अपना नाम जल्दी चाहता था।
कुछ तो मैं आदत से लाचार था और
इस पर मुझे विपक्ष में बोलना था
अतः मैटर की मैं उपेक्षा न कर स-
कता था। पीछे उसके समाप्त हो जाने
का भय था। खैर, अपनी बारी पर
अब बोलना ही था। अनेक प्रतियोगी
वहां बैठे हुए भी अपने भाषण कण्ठस्थ
कर रहे थे। आगरे के विजेता अला-
हाबाद के भी प्रतिनिधि आये थे। कुछ
कंपकंपी भी अवश्य थी। जिस समय
नित्यानन्द जी बोल चुके उस समय इतना
सन्तोष अवश्य हुआ कि अपने से
पूर्ववर्ती वक्ताओं को अतिक्रमण क-
रने में वे सफल रहे। सूर्यकान्त जी
मेरे पास बैठे थे और अब वे मेरी
दिलजमई कर रहे थे। मेरा समय भी
पास आ रहा था। मैं यही यत्न कर
रहा था कि ज़रा अपने को विचार के
प्रवाह में डाल लूं। सफल होकर
लौटने पर और असफल होकर लौटने
पर गुरुकुल में क्या होगा - एक बार
उसका चित्र भी आंखों के सामने आ गया।

जिस समय मैं स्टेज पर गया तो भूल गया कि सामने कितनी जनता बैठी है और कौन निर्णायक है। जल्दी २ अपना वक्तव्य उपस्थित करता था। विषय के अध्ययन और मनन से जो बातें हृदय में बैठ गई थीं उन्हीं को संक्षेप में भाषा का सहारा लेकर मैंने जनता के सामने उपस्थित कर दिया। सुना था कि हिन्दु विश्वविद्यालय की जनता को काबू करना जरा टेढ़ी खीर है किन्तु मेरा तो उसने पूरा साथ दिया। यहां तक कि हर्ष ध्वनि और करतल ध्वनि का समय भी पूरे भाषण की समाप्ति पर ही आया। भाषण के बाद मैंने अपने को बड़ा हलका अनुभव किया क्योंकि अब हारने जीतने किसी भी प्रकार की चिन्ता न रह गई थी। लोगों ने हम दोनों के भाषणों को बहुत पसन्द किया। वे अनुमान करने लग गये थे कि ट्रॉफी तो गुरुकुल की है। कोई मुझे प्रथम कहता था और कोई नित्यानन्द जी को, पर हमें अब कोई चिन्ता न रह गई थी। प्रो. खन्ना जी भी खुश थे। राम प्रसाद जी हमारे साथ थे। अब तो औरों की आलोचना तथा आपस की छेड़खानी ही शेष काम था। जो मिलता था - यही कहता था कि "In anticipation I congratulate you." इस से पूर्व हम वहां के विद्यार्थियों में अपरिचितों की भांति रहते थे किन्तु अब चारों ओर से अंगुलियां उठती थीं और ओठ हिलते नज़र आते थे। अधिक वक्ता होने से विवाद की दो बैठकें कर दी गई थीं। दूसरी बैठक में अहिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों के विद्यार्थी भाग लेने वाले थे। प्रथम बैठक की समाप्ति पर सर सीता राम ने मेरे कन्धों पर हाथ फेरते हुए इतना तो कह दिया था कि "भाई तुम तो बहुत अच्छा बोलते हो। तुम्हारा स्वास्थ्य भी यहां के विद्यार्थियों के लिये आदर्श है।" शेष निर्णायकों के व्यवहार तथा वार्तालाप से भी यही पता लगता था कि उन्हों ने गुरुकुल की ओर से दी गई वक्तृताओं को अधिक पसन्द किया है। दूसरी बैठक के बाद ४ बजे के लगभग निर्णय सुना या जाना था। मण्डप में चारों ओर से शोर हो रहा था। नाना प्रकार की ध्वनियां उठ रही थीं। लोगों ने अपने अपने कागज़ों पर अपना निर्णय भी लिख-लिखा था। सब की आंखें निर्णायकों की ओर थीं। हम जान बूझ कर काफ़ी पीछे बैठे थे ताकि सफलता न मिलने की अवस्था में भद्द तो न उड़े। हम भी चिन्ता और उत्सुकता से निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ आपस के सलाह मशवरे के बाद सीताराम जी ने प्रथम पदक के जो भाव का ज्वारभाटा आया उसका वर्णन उस क्षुद्र लेखनी द्वारा कर सकना मेरे लिये कठिन है। हम दूर बैठे थे अतः स्टेज तक जाने में देरी लगना स्वाभाविक था। रास्ते में लोग पीठ पर शाबाश देते जाते थे। अपने मुख विकार को छिपाने के लिये मैं निचले ओठ को दांतों से दबाये स्टेज

पर पहुँचा। सीताराम जी ने मौके से हाथ मिलाया और यह कह कर कि "हमने तो सुबह ही कह दिया था कि तुम कमाल कर बोले। प्रथम आने के लिये बधाई। इस बात का ध्यान रखना कि इस पदक की कीमत इसमें लगे सोने से कहीं अधिक है।" प्रथम पारितोषिक मुझे पकड़ा दिया। मैंने भी सब को झुक कर कृतज्ञता पूर्वक नमस्कार किया और प्रोफ़ेसर के सामने झुक कर अपने स्थान पर चला गया। मण्डप तो "Buck up Brahmachariji; Buck up Gurukul" इत्यादि नाना हर्षध्वनियों से गूंज रहा था। दूसरा इनाम जबलपुर के Robertson College के एक प्रतिनिधि को मिला था यद्यपि नित्यानन्द जी को न देकर उसको इनाम देना हमें पर्याप्त आश्चर्यकर हुआ प्रतीत हुआ। वैयक्तिक पारितोषिक वितरण के बाद अब विजयोपहार का और संस्था का प्रश्न था। इसके निर्णय में कुछ अधिक समय लगता हुआ प्रतीत हुआ जिससे हमें भी कुछ चिन्ता हो गई। फिर दूसरा इनाम भी और संस्था के पास चला गया था यद्यपि किसी संस्था के दोनों प्रतिनिधियों का रिकार्ड गुरुकुल जैसा निश्चायक न था। पास बैठे लोग कह रहे थे कि देर किस बात की हो रही है - ट्रॉफ़ी तो गुरुकुल की है। किन्तु देरी होने के साथ २ हमारी धुकधुकी बढ़ती जा रही थी। अन्त में गुरुकुल के पक्ष में निर्णय सुनाया गया। बड़ी हर्षध्वनि में हम दोनों भाइयों ने ट्रॉफ़ी को लेकर सफलता की शान से प्रो. खन्ना जी के चरणों में धर दिया जो कि स्टेज पर बैठे थे। मेरा पदक भी और दर्शकों के हाथों में घूम रहा था सभा के बाद लोगों ने हमको घेर लिया और तारीफ़ करते हुए ट्रॉफ़ी आदि देखने लगे। अब हम जिधर भी जाते थे लोग सम्मान और सभ्यता से पेश आते थे और बधाइयों पर बधाइयां आ रही थीं। स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि लोगों के दिलों पर गुरुकुल की धाक है। यह दूसरी विजय थी - मामूली बात न थी। हमें भी इस बात का गर्व था कि पता नहीं आगे कुल माता की सेवा का अवसर मिले या न मिले किन्तु इस मौके पर हमने गुरुकुल की कीर्ति को उज्ज्वल बनाये रखा और खास दायरे में उसके मस्तक को ऊँचा करने में कुछ मदद की।

यूं तो अब हम निश्चिन्त थे किन्तु संस्कृत के वाद विवाद का प्रश्न था। प्रोफ़ेसर जी हमें उसमें भी भाग लेने के लिये प्रेरित कर रहे थे। पीछे से ब्र. सत्यपाल जी तथा ब्र. चन्द्रगुप्त जी के आ जाने

से हम इस भय से मुक्त हो गये।

१८ को संस्कृत का वादविवाद था। चन्द्रगुप्त जी को अपना भाषण आद्योपान्त रटना पड़ा था और सत्यपाल जी ने भी तैय्यारी कर ली थी। संस्कृत के वादविवाद की प्रत्येक बात अद्भुत थी। ड्रॉ की आजीब थी। बहुत बड़ी और बेहूदा थी। ८ इनाम थे और किसी ढंग से न थे। एक एक संस्था से ८-८ व्यक्ति आये हुए थे। अधिकांश ~~और~~ वक्ताओं को ~~[illegible]~~ वादविवाद का ठीक पता ही न था। निर्णायक भी पुराने ढर्रे के थे। यही कारण था कि हमारे प्रतिनिधि संस्कृत में पूर्ण सफलता प्राप्त न कर सके और केवल चन्द्रगुप्त जी को दूसरा इनाम मिल सका। यद्यपि गुरुकुल के और केवल गुरुकुल के प्रतिनिधियों के भाषण ही सन्तोषजनक कहे जा सकते थे सब दृष्टिओं से। अधिकांश जनता हमारे पक्ष में थी और उसे निर्णायकों के निर्णय से असन्तोष था। दोपहर को अंग्रेज़ी का वादविवाद था। हमारा इसे देखने का भी विचार था। अंग्रेज़ी का वादविवाद भी बहुत अच्छा था। ऐसी बात मुझे कोई प्रतीत नहीं हुई कि गुरुकुल भी उसमें तय्यारी करके भाग न ले सकता हो। ज़रा अंग्रेज़ी बोलने का और उच्चारण का अभ्यास करना पड़ेगा। विषय की तय्यारी तो १०-१५ दिन में हो सकती है पर अंग्रेज़ी की तय्यारी साल के प्रारम्भ से करनी पड़ेगी।

उसके बाद हमारा वापिसी का प्रोग्राम था। पूज्य मालवीय जी, आचार्य ध्रुव, श्री रामनारायण जी मिश्र तथा प्रो. प्राणनाथ जी आदि से मिलने की बड़ी इच्छा थी पर समयाभाव के कारण सब विचारों को छोड़ कर वापिस आना पड़ा। तार आदि तो पहले ही दे दिया था। गुरुकुल आकर हमारा जो स्वागत हुआ व जो अन्य घटनायें घटीं वे सब पाठकों की आँख देखी बातें हैं। मनुष्य के जीवन का महत्त्व इतना ही है कि वह दूसरे मनुष्य की कुछ सेवा कर सके और उसे प्रसन्न रख सके। यदि कुल की प्रसन्नता के लिये हम कुछ कार्य कर सके तो इसके लिये परमप्रभु का जितना धन्यवाद किया जा सके वह थोड़ा है। हमको बनारस जाने का अवसर देने वाले अधिकारी गण तथा विषय की तय्यारी में सहायता देने वाले उपाध्याय भी धन्यवाद के पात्र हैं। इससे पूर्व कि मैं इस विवरण को समाप्त करूं - एक बात और लिख देना चाहता हूं। हिन्दु विश्वविद्यालय के कुछ विचारशील ~~व्यक्ति~~ के

विद्यार्थियों ने हमारे सामने बड़ी पवित्रता
और उन्नत से इन भावों को रखा था कि
हमको इस बात का गर्व है कि प्राचीनता
और भारतीय सभ्यता की दृष्टि से हमा-
रा विश्व विद्यालय अन्य विश्व विद्या
लयों से आगे है। किन्तु गुरुकुल
कांगड़ी एक ऐसा स्थान है जिसके
आगे प्राचीनता और भारतीय स-
भ्यता की दृष्टि से हमें मान
और लज्जा के साथ झुकना पड़ता
है। हमें इस बात का हार्दिक हर्ष है
कि कुछ वर्षों के बाद हमको अपने
पर आयी है क्योंकि अपने तथा गु-
रुकुल में हम भेद नहीं कर सकते।
क्या पाठक इन पंक्तियों के अर्थ को
समझ सकते हैं। गुरुकुल के
प्रत्येक ब्रह्मचारी और स्नातक
के सामने इस शान की रक्षा का
प्रश्न है। हमारे जीवन की एक यह
भी चिन्ता होनी चाहिये कि गुरु-
कुल किस प्रकार उन्नति कर
सकता है। 1) मासिक कमाने वाले
को भी 2 पैसे मासिक तो गुरुकुल
के लिये अलग धर देने चाहियें।
इसलिये नहीं कि बड़ी आर्थिक
सहायता होगी। वह तो जो होगी
सो होगी किन्तु उस कुलमाता की
याद बनी रहेगी। जिसकी गोद में
हमने अपने जीवन के अनुपम चौदह
वर्ष सुख की नींद में बिताये हैं।
मेरे सामने तो यही प्रश्न है कि क्या
इस प्राचीनता और भारतीय सभ्यता
की रक्षा करते हुए कोई ऐसा उपाय
नहीं निकाला जा सकता कि संसार
गुरुकुल की हस्ती को स्वीकार करे और
इसके स्नातक सब प्रकार से संसार में
उच्च जीवन बिता सकें? हमारा गुरुकुल
यद्यपि हिन्दु विश्व विद्यालय जैसा विशाल
और बड़ा नहीं है किन्तु सौन्दर्य में मेरी
दृष्टि में उससे कम नहीं है यदि सड़कें
आदि ठीक हो जांय तो। जीवन हमारा
कहीं अच्छा है। निवास प्रणाली भी
कहीं उत्कृष्ट है। किन्तु शिक्षा में तथा
शिक्षा के वायुमण्डल में पर्याप्त
परिवर्तन की आवश्यकता है।
ज्यूं 2 हमारे स्नातकों की संख्या
बढ़ती जायगी त्यूं त्यूं इस समस्या
का स्वरूप अधिक गम्भीर और दृश्य
होता जायगा।

प्रभु करें कि जिस कुल माता की
गोद में जीवन का यह मधुर काल व्यतीत
करने का अवसर मिला है वह दिन दूनी
रात चौगुनी उन्नति करे और आगे भी
उसका नाम न केवल हिन्दु विश्व वि-
द्यालय में अपितु सर्वत्र सम्मान
तथा श्रद्धा से लिया जाये। कुल-
माता की इस मान मर्यादा
का बहुत कुछ उत्तरदायित्व
कुलपुत्रों के कन्धों पर ही
है।

मेरठ में गुरुकुल-दल।

ले. — एक खिलाड़ी

इस बार जब गुरुकुल दल मेरठ टूर्नामेन्ट के लिये विदा हुआ, उस समय कुल का वायुमण्डल बहुत विक्षुब्ध था और इन शब्दों में उसका वर्णन किया जा सकता है कि 'वह वायुमण्डल दल के टूर्नामेन्ट में शामिल होने के पक्ष में नहीं था'। इसका कारण कई रूपों से कहा गया है। एक बहुत बड़ी दलील जो इसके विरोध में दी जाती रही है, यह थी कि दल की तैयारी टूर्नामेन्ट में जाने के लायक नहीं है। किन्तु हमारा यह दृढ़ विश्वास था कि हमारी तैयारी अच्छी है। प्रस्थान से कम से कम २० दिन पहिले से निरन्तर नियमपूर्वक खेल होती रही थी। और आयुर्वेद महाविद्यालय से देहरादून जाने से पूर्व भी ५-६ दिन खेल हुयी थी। इन स्थितियों में हमें अपने शामिल होने में कोई भी आपत्ति नजर नहीं आती थी।

यह तो घर का हाल हुआ और उधर बाहर मेरठ की सुनिये।

जब हम लोग मेरठ पहुंचे तो पं. इन्द्रमणि जी के आदमी हमें स्टेशन पर लेने के लिये आये हुये थे। उन्होंने हमें बड़ी हैरानी से देखा और अन्त में वे अपने आपको रोक न सके. उन्होंने पूछा आपके 'मध्य आगामी' (centre forward) तो दिखलाई नहीं पड़ते।

हम लोग सीधे अपने सुपरिचित जैन धर्मशाला में पहुंचा दिये गये। वहां पं. इन्द्रमणि जी आदि अन्य आर्य भाइयों ने हमारा बड़े प्रेम से स्वागत किया और हमें प्रोग्राम भी दे दिया।

हमारे पुराने खिलाड़ी अपने पहिले मैच को ही देखकर कुछ चुप से हो गये थे। हमारा पहिला मैच 'थर्ड इण्डियन डिविजनल सिगनल्स' से था। यह एक अच्छी मजबूत टीम थी। इसे अपने हाथ पड़ता देखकर पुराने खिलाड़ी खामोश थे, पर

नये रंगरूट विशेषतः श्री बलवीर तथा श्री प्रजापति विशेष आशावन्दी और उत्सुक हो रहे थे। और जिस प्रकार सहारनपुर में हमारे खिलाड़ियों ने पहले ही आपस में गोल बांट लिये थे कि इतने फलाने ने करने हैं और इतने फलाने ने उसी प्रकार उन्होंने भी गोल गिनाने शुरू किये। उनकी बातें कान देखने लायक थी। आखिर एक महापुरुष ने बताया कि मेरी टीम अच्छी है, पिछले साल जैसी नहीं, जो अच्छी तरह खेलना, तभी विजय मिलेगी, अन्यथा नहीं, तो ये उत्साही सज्जन डरने भी लगे।

खेल प्रारम्भ होते समय उलटा ही दृश्य था। पुराने खिलाड़ी खुश और निश्चिन्त प्रतीत होते थे पर "उत्साही सज्जन" कुछ सहमे हुये थे। प्रथम ३० मिनिट तक तो बराबर रहे। जिन लोगों ने बाहर के मैदान नहीं देखे होते वे सचमुच पहिली बार इतना घबरा जाते हैं कि उन्हें सम्भालना कठिन हो जाता है। समयार्ध के बाद श्री प्रजापति ने किया और इतनी जोर से वापिस भागे कि शाबाश देने वालों को शर्मिन्दा होना पड़ा। अगरा नेकं एकदम पक्ष प्रतिनिधि ने तोट कर लिया।

मेरा कथन तो यही है कि गोल करने के बाद धीरे२ आना चाहिये। इससे दो लाभ हैं - एक तो यह कि जरा दम लेने का समय मिल जाता है और दूसरा जो लोग शाबाशी देना चाहते हैं वे भी अपना उत्साह प्रकट करने का अवसर पा जाते हैं। एकदम भागने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे खेल से अनभिज्ञ व्यक्ति हो। लोग समझते हैं कि अन्धे के हाथ बटेर लगी है।

दूसरा गोल शॉर्ट कॉर्नर से हुआ। गुरुकुल की प्रथानुसार हमारा दल दाहिनी तरफ से ही कॉर्नर लेता है। किन्तु बाहर वालों के लिये यह कुछ नयी बात थी। इस पर जब श्री जगदीश ने गोल किया तो अम्बाला वालों ने दौड़ कर नाम पूछा और नोट कर लिया।

अब खेल जोर पकड़ गया। वे लोग भी 'रश' (Rush) करने लगे। हमारे सभी खिलाड़ी खूब जवाब दे रहे थे। आखिर इन्होंने तीसरा भी गोल कर दिया और अम्बाला वालों ने उसका भी नाम नोट कर लिया।

खेल समाप्त होने में थोड़ी ही देर थी पर हमने खूब दबा रखा था। लोग कहने लगे

"गुरुकुल दल" दूसरे Half Time में जोर पकड़ता है। हम लोग प्रसन्न होकर लौट आये।

अगला मैच "मार्थ यूनियन" से था। यह दल पिछले तीन सालों तक इस टूर्नामेन्ट को जीतता रहा है अतएव लोगों को इसकी बड़ी धाक थी। एक अंग्रेज मि. पूल ने हमारे दल के ओलिया श्री जगदीश को बुलाकर २०) इनाम के रखने और कहा कि युजफ्फरनगर टीम को जीतने पर ये आपके ही होजायेंगे।

२५ तar. को हमारा मैच प्रारम्भ हुआ। आज खेलसे पूर्व खिलाड़ी लोग बार २ लघुशंका जाते थे। प्रारम्भ में हमारे खिलाड़ी बिलकुल हतोत्साह प्रतीत हुये और थोड़ी ही देर में उन्होंने एक गोल हम पर चढ़ा भी दिया। इसका हमारे गोलकीपर महोदय प्रकाशानन्द जी ने भी एक अजीब करतब दिखाया, न जाने उन्हें क्या सूझी कि जब गेन्द गोलमें आती तो वे साष्टाङ्ग प्रणाम करते और गेंद देवी उनकी भक्ति से अत्यधिक प्रसन्न हो लौटी आती और उनके कान के बीच से धीरे धीरे निकल कर एक बड़े वेग से सनसनाती हुयी गोल में अन्तर्धान होगयी। उनकी तपस्या सफल होगयी। लोगों ने ताली बजाकर हर्षध्वनि प्रकट की पर हमारे दिल दबे नहीं। प्रजापति जी में आज वह जोश नहीं था पर ब्रह्मचारी के मुंह पर एक नया जोश था। हम लोग लगे रहे पर कुछ न हुआ। समयार्ध तक हम हारे हुए थे। पर समयार्ध के बाद पं. विश्वनाथ जी के जोश ने हमारे अन्दर नई जान भर दी। खेल शुरू होते न होते श्री ब्रह्मचारी ने गेन्द उनके फट्टे से जा टकराई। हम लोगों के दिल बल्लियों उछल गये। अब हमारे श्री प्रजापति की बेहोशी भी टूटी और मुखपर से हवाइयां गायब हुईं। किसी तरह नीचा मुख कर खड़े २ आखिर उन्होंने भी किसी तरह इसी गोल का ही तो दिया। इस गोल का श्रेय प्रजापति जी को नहीं दिया जा सकता। इसका श्रेय श्री विश्वजी को दिया जाना चाहिये। उन्होंने अपने गोल के अन्दर जाती २ गेन्द बचाकर फिर आगे आगे लाकर प्रजापति जी को दी। इस पर उनकी जगह भी Left in थी यदि फिर

गोल न करते तो उनके लिये कहीं स्थान ही नहीं था। पर इस गोल के बाद हमारे पिछले रक्षकों ने साथ छोड़ दिया। वेदप्रकाश जी तो ठीक थे पर बलबीर जी कुछ घबड़ा गये उनकी हॉकी छोटी पड़ रही थी तात्पर्य यह कि वे हालत सम्हाल न सके और खेल समाप्त होते २ गोल उतार दिया। वेद प्रकाश जी का प्रयत्न सराहनीय था कि बिचारे रुकते गये, उस पर भी हांफ रहे थे। पर उन्होंने गेंद लेने का बड़ा प्रयत्न किया, स्वयं लुढ़क भी गये। पर गेंद हाथ न लग सकी और तीन बॉलों से गोल हो गया।

खेल समाप्त हुआ और हम लोग आधे प्रसन्न आधे दुःखी बाहर निकले। मैच Drawn होगया अगले दिन २ बजे का समय निश्चित हुआ और हम अपने निवासस्थान को चल पड़े।

स्थगित सानुक्रम मैच।

२ बजे से प्रारम्भ होते हैं। ठीक २ बजे हमारा मैच शुरू हुआ। खेल खूब जोश से होती थी। गेंद कभी हमारी तरफ कभी प्रतिपक्षियों की तरफ जाती थी पर कोई गोल न कर सका! आज-प्रतिपक्षियों का "फुल बैक" बड़ा चुस्त और तेज हो रहा था। हमारी सारी फॉरवर्ड लाइन एड़ी चोटी तक जोर मार गयी पर-उसने गोल न होने दिया। इधर हमारे रक्षक क्रमशः ढीले पड़ने लगे। खेल समाप्त होगयी। आज भी दोनों दल बराबर रहे। आज की खेल में मेलजोल (Combination) कुछ ठीक था पर Self Carry अधिक थी। अगले दिन फिर २ बजे सानुक्रम प्रारम्भ हुआ। शुरू से ही खेल जोर पकड़ गयी ~~मध्यान्तर के बाद~~ उनकी forward line का वेग (Rush) हमारे रक्षक न सम्हाल सके और उन्होंने एक गोल चढ़ा दिया। मध्यान्तर के बाद हमारी forwardline भी खूब खेली पर 'आगे दौड़ पीछे चौड़' होने लगी। फटाफट तीन फेंटे [बज] बजे और हमारा यश, हमारी शान, और हमारी धाक मेरठ टूर्नामेंट से सदा के लिये विदा हो-गयी। जनता ने शाबाश देनी बन्द करदी।

धीरे २ खेल समाप्त हुयी। हमारे खिलाड़ी भाई अपना लटकता मुंह लेकर लौट रहे थे। सब को पीपें सुनायी दे रहे थे। सभी चुपचाप चल रहे थे। लोग आ आ कर हाउस बन्धान के बाजते लगा देने लगे। हम चुप थे, निराश थे इन सब कठिनाइयों से इतने घबड़ाये हुए नहीं थे जितने पीपों की आवाज से घबराये हुये थे।

आखिर वापिस लौट आये। हमारा तांगा आया, उससे पूर्व दो तांगे आ चुके थे पर सब तरफ सन्नाटा था। हमने सामान उठाया और चुपचाप कमरे में बन्द हो गये। कुछ ही पलों के बाद चारों तरफ पीपों की मधुर-ध्वनि सुनायी देने लगी। भविष्या के कमरे को तो घेर लिया। खूब पीपें बजे। सारा गुरुकुल पीपों से गूंज उठा।

महाविद्यालय के तथा विद्यालय के छोटे भाइयों ने भी हमारा स्वागत पीपों से किया। परन्तु मेरा विश्वास है कि हमारी इस हार में कोलताय भगवान का ही हाथ था। यह भी मुझे विश्वास है कि एक दिन जरूर हमारे दल मैच को जीतेगी

श्री श्रद्धानन्द हॉकी टूर्नामेन्ट

२१ दिसम्बर को बड़ी निराशा के बाद टूर्नामेन्ट शुरू हुआ। किसी को इस बात की पूर्ण आशा न थी कि इसबार टूर्नामेन्ट सफलता से हो भी जायगा, क्योंकि पूज्य आचार्य जी इसके पूर्ण विरोध में थे। जैसा भी टूर्नामेन्ट हुआ उसका परिणाम आपके सामने है। उस पर हम इस समय कुछ न कहेंगे। सारे टूर्नामेन्ट का इन्तज़ाम कैसा रहा और किस तरह से सब भाग लेनेवाली पार्टियों के रहने और खाने का इन्तज़ाम किया गया, उसमें क्या त्रुटियाँ थीं; यह बताना हमारे इस लेख का उद्देश्य नहीं है; पर फिर भी इन सब छोटे २ शीर्षकों पर अन्त में कुछ कहने की कोशिश की जाएगी।

पहिला मैच हरिद्वार A और ऋषिकुल मैडिकल कॉलेज का हुआ। उसमें दोनों बराबर रहे। अगले दिन २२ को तीन मैच हुये। पहिला पुलिस टीम और गुरुकुल युनिवर्सिटी A का मैच हुआ। १२ गोल से ए जीत गई। दूसरा सहारनपुर और U.S.A. का मैच हुआ। सहारनपुर २ गोल से जीत गया। खेल से पहिले तक सहारनपुर वालों को यह मालूम नहीं था कि U.S.A. क्या बला है। जब गुरुकुल C अपने पहनाये U.S.A. के रूप में निकली तो खेल शुरू होने पर थोड़ी देर के लिये ऐसा मालूम पड़ा कि सहारनपुर वाले भी कुछ चक्कर में हैं कि यह कौन टीम है? 'C' टीम भी खूब खेली और केवल दो ही गोलों से सहारनपुर वाले हरा सके।

तीसरा फिर वही २१ का मैच हरिद्वार A और ऋषिकुल मैडिकल कॉलेज का हुआ। उसमें ऋषिकुल एक गोल से हार गया। पर ऋषिकुल की टीम ने रैफ़्री के निर्णय से असन्तुष्ट हो कमिटी के सामने पुनः खेल के लिये प्रार्थनापत्र दिया।

यद्यपि ब्र. बसन्तलाल जो कि उस टीम में खेल रहे थे, उन्होंने कहा

भी था कि तुम प्रार्थनापत्र मत दो क्योंकि इसका कुछ फ़ायदा न होगा, तुम्हारे ५) भी खराब जायेंगे; पर तो भी उन्होंने प्रार्थनापत्र दिया और उनके भाग्य से कहिये या कमेटी की बुद्धिमत्ता कहिये, पास हो गया। डा. साहिब जानते थे कि ऐसी२ इधर बालों पर यदि मैच दुबारा होने लगे तो शायद सारा टूर्नामेन्ट ही दुबारा हो जाय। कभी भी कमेटी इन बातों पर ध्यान नहीं देती। यदि देती है तो उसकी ही कमज़ोरी सिद्ध होती है। माना उसने इनका प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया, इससे उसी की त्रुटि जाहिर होती है, क्योंकि रैफ़्री भी तो उसी के बनाये हुये हैं। एक तो रैफ़्री की हतक, दूसरी अपनी कमज़ोरी का स्पष्टीकरण।

एक बार हुआ सो हुआ, पर वही बात हम मुजफ्फर नगर और गुरुकुल B. के मैच के सम्बन्ध में भी देखते हैं। मुजफ्फरनगर ने भी हारने पर पुनः खेलने के लिये प्रार्थनापत्र दिया और उनकी बात मान ली गयी। यहाँ प्रायः यह कहते सुना गया है कि अभी टूर्नामेन्ट शुरू हुआ है इसलिये ऐसी२ ढीलें करनी ही पड़ती हैं, जिससे बाहर की पार्टी सन्तुष्ट रहें। पर यह उक्ति इस पक्ष को सिद्ध करने के बजाय विपक्ष को सिद्ध करती है। यदि टूर्नामेन्ट के शुरू में ही सख्ती से सब नियमों का ठीक२ पालन न किया गया तो उसकी आगे क्या हालत हो जायगी, इसका अनुमान आप स्वयं ही लगा सकते हैं।

यहाँ प्रसंगवश कमेटी पर हम इतना कह गये हैं। अब हम फिर अपने प्रकृत विषय पर आते हैं।

२३ को फिर वही स्थगित मैच हरिद्वार 'ए' और महाविद्यालय मै. कॉ. का होना था, पर हरिद्वार 'ए' कमेटी के निर्णय के विरोध में क्षेत्र में ही नहीं आयी। इस तरह वह हारी समझी गई। दूसरा मैच मुजफ्फरनगर और गुरुकुल B. का हुआ जिसमें गुरुकुल B. जीत गयी। पर उन्होंने प्रार्थनापत्र दिया और उनका मैच आठवें दिन के लिये फिर रक्खा गया।

२३ की शाम से ही वर्षा के चिन्ह दिखाई देने लगे थे, बल्कि उस दिन मैच के समय वर्षा हुई भी थी।

पर अगले दिन तो सारे दिन बारिश होती रही। सारा क्रीडाक्षेत्र पानी से भर गया। उस दिन कोई मैच न हो सका और खेलने वाली पार्टी को रुखसत दे दी गयी। परन्तु अब क्रीडाक्षेत्र के एक हिस्से में पानी भर गया था, अतः दोनों क्रीडाक्षेत्रों को मिला कर नया ही क्रीडाक्षेत्र बनाया गया। बीच में वर्षा हो रही थी परन्तु क्रीडामन्त्री जी ने बड़े उत्साह से अपने कुछ सहयोगियों को लेकर सुबह ६ $\frac{1}{2}$ बजे से लग कर नये ग्राउन्ड को पूरी तरह ठीक कर तय्यार कर दिया और ९ बजे सुबह टूर्नामेन्ट प्रारम्भ हुआ। सुबह दो मैच हुये। एक गुरुकुल B. और मुज़फ्फ़रनगर का हुआ, जिसमें फिर गुरुकुल B. जीत गई, और दूसरा सिन्हा क्लब और महाविद्यालय ब्रह्मचर्याश्रम का मैच हुआ, जिसमें सिन्हा क्लब जीत गई। ब्रह्मचर्याश्रम वालों का खेल आशातीत उच्चतर रहा।

शाम को ४ बजे फिर मैच शुरु हुये। पहिला मैच सिन्हाक्लब और गु. कु. 'अ' का हुआ। यद्यपि सिन्हा क्लब ने अपने कई खिलाड़ी बदल रखे थे और वे खिलाड़ी उस R.V.C. के थे जो कि पहले गुरुकुल को ६ गोल दे चुकी हैं, 'A' पार्टी ६ गोलों से जीती। दूसरा मैच सहानपुर का और गुरुकुल B. का था। वास्तव में टूर्नामेन्ट के अन्दर मैच यहीं से शुरु होते हैं। अभी तक कोई ऐसा अच्छा और मज़ेदार सान्मुख्य न हुआ था। खेल बहुत तुला हुआ था। B. ने पहिले एक गोल चढ़ा दिया पर अन्तिम दो मिनटों में वह उतर गया। इस तरह उनका मैच स्थगित रहा।

अगले दिन २६ को यही एक मैच हुआ। सहानपुर टीम को आशा थी कि वह अब की बार शील्ड ले जायेगी, इसलिये जब प्रथम मैच में उस पर B. ने गोल कर दिया था तो उनका जोश बहुत बढ़ गया था, क्योंकि 'बी' से यदि वे हार कर जाते तो उनकी बहुत ही बदनामी थी।

इसलिये दूसरा मैच भी बहुत अच्छा हुआ। बड़ी मुश्किल से उन्होंने एक गोल B पर चढ़ाया। 'बी' ने उनका अच्छा मुकाबिला किया। यद्यपि B उनके टक्कर की न थी, पर

तो भी उस पर वे एक गोल से ज्यादा न चढ़ा सके। इसमें बहुत कुछ श्रेय गुरुकुल B के बैक और गोलकीपरों को दिया जा सकता है। गोलकीपर श्री विजय बहुत अच्छा खेले, और इन्होंने कई बार दर्शकों से हर्ष ध्वनि ली। इस प्रकार इन्होंने वह मुकाबिला किया कि लोग वाह २ कर उठे।

सहारनपुर टीम ही इस टूर्नामेन्ट में बाहर की सब टीमों से अच्छी थी, अतः उसकी खेल के विषय में यहाँ कुछ कह देना आवश्यक है। सहारनपुर के दो तीन खिलाड़ी - Centreforward, Back, Left out बहुत अच्छे थे। Centre forward का passing बहुत कमाल का था। left out का नाम ही हिरना रक्खा हुआ था, और वह था भी इसी नाम के अनुरूप। वैसे तो सारी टीम ही अच्छी थी पर इस बार Shield जीतने के विश्वास के कारण वह और भी अच्छा खेल रही थी।

२८ को final हुआ। फ़ाइनल में गुरुकुल 'A' और सहारनपुर टीम पहुंची थी। २८ की पहिली रात को सहारनपुर वालों ने कहा कि यदि रैफ्री न बदले गये तो हम फ़ाइनल में न खेलेंगे और जाने के लिये बिस्तरे बांध लिये। परन्तु पीछे से समझाने पर उन्होंने मान लिया कि वे खेलेंगे। एक रैफ्री सहारनपुर के मा. दुर्गाप्रसाद जी और दूसरे सर्दार हजारासिंह जी रक्खे गये।

फ़ाइनल के दिन बड़ी रौनक थी, और दिनों की अपेक्षा दर्शक भी ज्यादा थे और वैसे भी इन्तज़ाम खूब ठीक था। सहारनपुर के भाग्य का आज निर्णय था। बाहर के आदमी सहारनपुर की तरफ़ थे। हम में से भी बहुत सारे उनके ही पक्ष में थे। हमारा कहना था कि अच्छा हो 'शील्ड' बाहर चली जावे, उससे टूर्नामेन्ट की ज्यादा प्रसिद्धि होगी। खेल शुरू हुआ। थोड़ी देर बाद A ने एक गोल चढ़ा दिया। बिगुल बजने लगे, कुछ भाइयों की हर्षध्वनि तथा तालियों की गड़गड़ाहट ने उसका जवाब दिया। परन्तु अभी बिगुलों का शब्द, तालियों की गड़गड़ाहट खतम भी नहीं हुये थे कि हिरना ने एक दम से गोल उतार दिया। इस पर दर्शकों ने अपूर्व उल्लास प्रकट किया। इस समय खेल बड़ी तुली हुई थी, आदमी सहारनपुर का जोश बढ़ा रहे थे। इनकी खेल को देख कर हम कह सकते हैं कि टीम हमारी A

के मुकाबिले में बी ही थी, पर हाफ़ टाइम के बाद अचानक एक गोल इन पर चढ़ गया। बड़ी कोशिश करने पर भी वह इनसे न उतरा। आखिर को भाग्य भी कोई चीज़ है, उसने इनका साथ न दिया। इनके जीतने में किसी प्रकार भी हमें सन्देह न था, पर भाग्य को यह मंज़ूर न था। इस तरह शील्ड गुरुकुल में ही रही। एक बात में हम यहाँ अवश्य कह देना चाहते हैं कि 'हिप हिप हुर्रे' का रिवाज़ एक दम उड़ा दिया जाना चाहिये। जब कि इसके मुकाबिले में हमारे पास एक वाक्य है, तो हम क्यों उसे छोड़कर विदेशी चीज़ का आश्रय लें।

अन्त में हम टूर्नामेन्ट के प्रबन्ध और उसके प्रबन्धक क्रीडामन्त्री के विषय में कुछ कहना चाहते हैं। दैवीय विपत्तियों के तथा अन्य बाधाओं के होते हुये भी क्रीडामन्त्री जी ने खूब अच्छा प्रबन्ध कर दिया। पहले एक दो दिन तो प्रबन्ध ठीक नहीं रहा पर पीछे से ठीक हो गया। पर हमारा ख्याल है कि इसे आदर्श प्रबन्ध नहीं कहा जा सकता। हरेक काम में देरी ज़रूर होती थी।

हमारी समझ में क्रीडामन्त्री जो कि इसका मुख्य प्रबन्धक है, उसे जहाँ तक हो सके खेल से अलग रहना चाहिये, क्योंकि प्रबन्ध कार्य ही ऐसा है। यह तभी सफल हो सकता है जब कि अन्य बातों से ध्यान हटा इसे किया जावे। पर अबकी मन्त्री जी मंत्री तो थे ही साथ २ 'A' के प्लेयर भी थे, रैफ़्री भी थे। कुछ ने इस पर ऑब्जेक्शन भी किया था।

रैफ़्री का प्रबन्ध भी कुछ ऐसा ही था। जहाँ तक हो सके बाहर के रैफ़्री ही बनाने चाहियें। इससे किसी को टूर्नामेन्ट की बुराई करने का मौका नहीं मिल सकता। यदि एक रैफ़्री भी बाहर से बुला लिया जाने तो काम चल सकता है। खर्च की बात तो यह है कि यदि चाय पानी और नारंगी में बीस खर्च न कर इधर थोड़ा खर्च कर दिया जाता तो अच्छा होता। इस दिशा में अधिकारियों का ध्यान भी बहुत खिंचा है और अगली बार से यह त्रुटि दूर करने की पूरी कोशिश करने का वचन और आश्वासन दिया है।

गुरुकुल - समाचार

ऋतु :—

शरद् ऋतु का चारों तरफ साम्राज्य है। प्रातःकाल ठण्डी हवा के थपेड़ों के डर से बाहिर निकलने तक को मन नहीं चाहता। कुछ दिनों की बारिश ने तो सर्दी को और भी क्रूर और प्रबल बना दिया है। इस बार और सालों की अपेक्षा सर्दी ज्यादा पड़ रही है।

स्वास्थ्य :—

सर्दियों में तो स्वास्थ्य अच्छा ही रहा करता है क्योंकि शरीर के बढ़ने का मौसम तो यही है। इसी कारण एक भी महाविद्यालय का विद्यार्थी बीमार नहीं है, न गत मासों कोई बीमार पड़ा। एक दो केस हुए भी हों तो ऐसी कोई बात नहीं। हां, चोट वालों की संख्या यद्यपि अल्प ज्यादा रही पर अब उनसे भी हस्पताल खाली है।

आसपास पंचपुरी में प्लेग फैलने के कारण इसके यहां फैलने की संभावना से सबको टीके लगा दिए और चारों तरफ़ की सफाई पर ध्यान दिया गया इससे अब यहां प्लेग के फैलने की ~~बहुत कम~~ न के बराबर संभावना है. यद्यपि प्लेग अभी चारों तरफ़ कम नहीं हुआ है कोई बहुत वृद्धि भी नहीं हुई है।

छोटे में से तीसरी पांचवीं के कुछ विद्यार्थियों को खसरा होगया था अतः सब छोटे विद्यार्थियों को टीके लगवा दिए गए। वह फैलने न पाया। जिनको हुआ भी था उनका अच्छा होगया है। इस समय छोटे विद्यार्थी भी लगभग सब चोट वाले हैं।

इस सुप्रबन्ध के कारण डाक्टर

साहब का उद्योग सराहनीय है। रोग की संभावना होते ही उसका उपचार किया जाता है।

एक बात पर हम डा. साहब का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि छोटे ब्रह्मचारियों को फोड़े फुन्सी हो जाते हैं और वे प्राय: उन्हीं ही को होते हैं अत: इस पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि उन्हें ये न हो सकें। इसका कुछ विशेष इन्तजाम होना चाहिए।

सभाएं :—

इस सत्र सभाओं के साप्ताहिक अधिवेशन नियम पूर्वक नहीं हुए। बस, मंत्र उपमंत्री और मंत्री को चुनाव बाद सभाएं शान्त पड़ गईं। संस्कृतोत्साहिनी के मंत्री ब्र. वासुदेवजी और उपमंत्री भद्रसेन जी चुने गए। इसी प्रकार वाग्वर्धिनी के मंत्री, उपमंत्री क्रमश: ब्र. सूर्यकान्त जी और ब्र. बलदेव जी इ.प्र. चुने गए। कॉलिज यूनियन के मंत्री ब्र. भारतभूषण जी चुने गए हैं।

कॉलिज की इन सभाओं के इस सत्र में न होने का कारण एक यह भी है उस सत्र में वार्षिक परीक्षा के पास आने कारण विद्यार्थी पढ़ाई में ज्यादा ध्यान देने लगते हैं। दूसरा यह है कि इसी सत्र में पास पास कई त्यौहार भी आ जाते हैं। पर हम समझते हैं कि यदि मंत्री उत्साही हो तो दशा कुछ सुधर सकती है। इसका सिर्फ यही उपाय है कि मंत्री का चुनाव इसी में न डाल दिया जाए। यह काम काफी गंभीरता का है पर इस तरफ ध्यान नहीं दिया जाता।

कोई अन्य विशेष बात सभाओं के बारे में कहने की नहीं।

मान्य अभ्यागत :—

इस सत्र कई मान्य अभ्यागत हमारे कुल में पधारे। एक, डेढ़ महीना पहिले Mr. . Professor of Theology, Theological College Java. यहां आए थे। वे छ महीने के लिए हिंदुस्तान में हिंदुधर्म की स्टडी के लिए आए हुए थे। यहां पर उनका 'जावा' भूत और वर्तमान (Java Past and Present) इस विषय पर लेक्चर हुआ।

इसके एक महीने बाद ही दो तीन मान्य अतिथि यहां पर पधारे। उनमें से एक St. Nihal Singh थे। आप का यहां कोई व्याख्यान न हुआ क्योंकि आपको किसी आवश्यक कार्य से कहीं जाना था। आपने केवल गुरुकुल विश्व-विद्यालय के भिन्न २ भागों की फोटो ली और वापिस लौट गए।

दूसरे मान्य दर्शक चावला थे। आप प्रथम हिंदुस्तानी वर्ष्टि जो कि करांची से लण्डन गए थे। आप से व्याख्यान के लिए कहा पर आप इस चीज़ के लिए तैयार होकर न आए थे केवल आपसे विद्यार्थियों में हवाई जहाज़ सम्बन्धी बातों पर प्रश्नोत्तर ही हुए।

तीसरे मान्य अतिथि विजयराघवाचार्य थे। विद्यार्थियों ने जब 'अर्जुन' में पढ़ा कि आप दो तीन दिन के लिए हरिद्वार में आए हुए हैं तो आपसे गुरुकुल में पधारने के लिए प्रार्थना की गई आपने उसे स्वीकार किया और गुरुकुल में शाम को पधारे। आपका कोई खास व्याख्यान न हुआ सिर्फ आपने कुछ मिनिट गुरुकुल और श्रद्धानन्द के विषय में कहा।

विशेष व्याख्यान :

विशेष व्याख्यानों की संख्या इस सत्र साधारण रही है। साहित्य परिषद् की तरफ़ पं. जयचन्द्र जी विद्यालंकार के दो तीन व्याख्यान हुए। एक दो व्याख्यान पं. देवराज जी 'मुनि' के इसी प्रकार की तरफ़ से हुए। इसी प्रकार वाग्वर्धिनी ने भी ४-५ व्याख्यान करवाए। एक अभी हाल में बृहस्पतिवार २६ दि. को प्रो. परमात्मशरण जी प्रो. हिस्ट्री हिन्दु युनीवर्सिटी का व्याख्यान "मध्यकालीन भारत की वास्तुकला।" इस विषय पर हुआ। आपने मोटी तौर से वास्तुकला की विकास पर प्रकाश डाला। और बताया कि इसका कितना ज्यादा सम्बन्ध तत्कालीन सभ्यता से था।

२०४

005693

:विविध:

— श्री आचार्य देवशर्मा जी १ जनवरी को किसी कार्यवश रुड़की जा रहे हैं।

— श्री प्रो० सत्यकेतु जी 30 दिसम्बर को लाहौर चले गए।

— छोटे विद्यार्थियों ने बृहस्पतिवार २९ दिसम्बर को 'सफाई दिवस' मनाया है। और हर बृहस्पति वार को मनाया करेंगे।

— आज श्री अविनाश चन्द्र जी के सभापतित्व में वाग्वर्धिनी सभा का जन्मोत्सव मनाया जाएगा।

— आजकल पं. शान्तिस्वरूप जी स्नातक कुल में आए हुए हैं।

— श्री आचार्य जी आ. प्र. स. पंजाब के प्रतिनिधि रूप से ऐक्य सम्मेलन में शामिल होने इलाहबाद गए थे। अब वे लौट आए हैं।

— श्री श्रद्धानन्द हॉकी टूर्नामेंट समाप्त होगया है। गुरुकुल को शील्ड मिली है।

— हिन्दु विश्व विद्यालय की अन्तर्विश्वविद्यालय प्रतियोगिता में हिस्सा लेने के लिए जो भाई गए थे वे विजयी होकर वहां से लौट आए हैं।

— गढ़ के मेले में हॉकी के मैच में हिस्सा लेने वाले भाई भी विजयी होकर लौट आए हैं।

— संस्कृत के वाद विवाद में भी हिस्सा लेने वाले एक भाई द्वितीय रहे हैं।

— नवीन क्रीडामंत्री का चुनाव होगया है। श्री देवकीर्ति जी क्रीडामंत्री और श्री गुरुदेव जी क्रीडोपमंत्री हैं।

— नए मुखिया का चुनाव भी हो गया है। श्री ब्रह्मवीर जी नए मुखिया चुने गए हैं।

— गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की जो पार्टी गाजियाबाद के टूर्नामेंट में भाग लेने को लिए गई थी वह जीत कर शील्ड नहीं कप ले लौट आई। और पीतल के मैडल भी मिले हैं।

005693